जनवरी, 2020
I.S.S.N. : 2457-0486

उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Colan-11

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग, प्रभारी वि.सा.प्र.

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन, विधि
संकाय लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

परामर्शदाता : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN 2457-0486

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2020 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0486

उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका

जनवरी, 2020 अंक - 1

प्रधान संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक

असलम खान

सत्यमेव जयते

विधि साहित्य प्रकाशन

(2020) 1 दा. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on Website → https://bharatkosh.gov.in/product/product

---

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

उच्चतम न्यायालय भारत की न्यायपालिका के शीर्ष पर स्थापित है जिसे अंतिम न्यायनिर्णयन का अधिकार प्राप्त है । प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय का गठन किया गया है । उच्च न्यायालय के अधीनस्थ श्रेणीबद्ध न्यायालय हैं और कुछ राज्यों में पंचायत न्यायालयों को भी स्थापित किया गया है । इन न्यायालयों में न्याय पंचायत, पंचायत अदालत, ग्राम कचहरी आदि प्रमुख हैं । प्रत्येक राज्य के जिला स्तर पर जिला न्यायालयों का गठन किया गया है । इन न्यायालयों का पर्यवेक्षण जिला एवं सत्र न्यायाधीश के अधीन किया जाता है इसीलिए जिला एवं सत्र न्यायाधीश को जिले का सर्वोच्च न्यायिक अधिकारी माना जाता है । समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए न्यायाधीशों की सक्रिय भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है । साथ ही अधिवक्ताओं का भी कर्तव्य है कि वे न्यायालय का साथ दें ताकि सत्य की जीत हो सके । इसके लिए न्यायाधीशों और अधिवक्ताओं को निचले न्यायालयों से लेकर उच्चतम न्यायालय तक कार्य करते समय विधिशास्त्र के सिद्धांतों को सदैव ध्यान में रखना चाहिए । विधिशास्त्र जिसे अंग्रेजी भाषा में ज्यूरिसप्रूडेन्स (Jurisprudence) कहा जाता है जो दो शब्दों Juris और prudence से मिलकर बना है । ज्यूरिस का अर्थ विधान है और प्रूडेन्स का अर्थ ज्ञान है । इसका अर्थ यह हुआ कि विधान के ज्ञान को विधिशास्त्र कहा गया है । इस संदर्भ में विधि का अर्थ होता है देश की साधारण विधि जो उन नियमों से पूर्णतया पृथक् है जिन्हें विधि से सदृश्य रहने के कारण विधि का नाम दिया जाता है । यदि हम विज्ञान शब्द का प्रयोग इसके अधिक से अधिक व्यापक रूप में करें जिसमें बौद्धिक अनुसंधान के किसी भी विषय का ज्ञान हो जाए तो हम कह सकते हैं कि विधिशास्त्र देश की साधारण विधि का विज्ञान है । इससे पता चलता है कि न्यायालय में न्याय की जीत के लिए न्यायाधीशों और अधिवक्ताओं दोनों को ही विधिशास्त्र की पृष्ठभूमि में अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए ।

इस अंक में सती (निवारण) अधिनियम, 1987 को भी प्रकाशित किया जा रहा है ।

इसके अतिरिक्त इस अंक में सामाजिक कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है । यह अंक विधि विद्यार्थियों, वकीलों, न्यायाधीशों, विधि अध्यापकों तथा विधि के ज्ञान में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए पर्याप्त रूप से लाभकारी है । इस अंक में अन्य ज्ञानवर्धक सामग्री भी है जिसका आप परिशीलन करें और अपने अमूल्य सुझावों से अवगत कराएं ।

असलम खान
संपादक

उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका

जनवरी, 2020

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
पंचू मंडल **उर्फ** पंचू गोपाल मंडल **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य	28
बांधन **बनाम** छत्तीसगढ़ राज्य	81
मोहम्मद नसीम रजा रहमानी **उर्फ** मुन्ना **बनाम** बिहार राज्य	109
मोहम्मद सलीम **उर्फ** सलीम अंसारी **बनाम** उत्तराखंड राज्य	1
श्रीनाथ **बनाम** राज्य	87
सत्रजीत रॉय **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य	11
हरिकृष्णन **बनाम** केरल राज्य	58

संसद् के अधिनियम

सती (निवारण) अधिनियम, 1987 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 - 12

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 154 – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में 16 घंटे का विलम्ब – अपराध का रात में कारित किया जाना – अप्रत्याशित घटना से आहत के माता-पिता का हताश पाया जाना – आहत के माता-पिता सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं और वे इस अप्रत्याशित घटना से हताश भी हो गए थे जिसके कारण वे घटना की रात्रि को ही प्रथम इतित्ला रिपोर्ट तत्काल दर्ज नहीं करा सके थे, इसलिए तर्कसम्मत स्पष्टीकरण के आधार पर अगले दिन दर्ज कराई गई रिपोर्ट को विलम्बित नहीं कहा जा सकता ।

पंचू मंडल उर्फ **पंचू गोपाल मंडल** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** 28

– धारा 216 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 306, 302 और 376] – आरोप पत्र में संशोधन – पूर्व में दंड संहिता की धारा 306 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया जाना – तत्पश्चात् वास्तविक परिवादी, पीड़ित मृतका के पिता द्वारा आवेदन किए जाने पर आरोप पत्र को संशोधित करके दंड संहिता की धारा 302 और 376 के अधीन आरोपों का विरचित किया जाना – चुनौती – दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन न्यायालय में निर्णय की उद्घोषणा से पूर्व किसी भी समय आरोपों में परिवर्तन करने या उनमें किसी अन्य आरोप को सम्मिलित करने की शक्ति निहित है – शव-परीक्षण रिपोर्ट और अन्य परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर अभियुक्त के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302

पृष्ठ संख्या

और 306 के अधीन प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है अतः आरोप पत्र में संशोधन किया जाना न्यायोचित है ।

सत्रजीत रॉय बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** 11

– धारा 293 – सरकारी वैज्ञानिक विशेषज्ञों की रिपोर्ट – चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र और शवपरीक्षण रिपोर्ट में क्षतियों की संख्या में अन्तर – चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र मात्र प्राथमिक चिकित्सा परीक्षा को दर्शाता है जबकि शवपरीक्षण रिपोर्ट विस्तार से की गई परीक्षा है, अतः बाद में की गई शव परीक्षा को पूर्ववर्ती चिकित्सा परीक्षा पर वरीयता दी जाएगी ।

श्रीनाथ बनाम **राज्य** 87

– धारा 303 और 304 [दंड संहिता, 1860 की धारा 302] – विचारण न्यायालय द्वारा हत्या के मामले में दोषसिद्धि – विधिक सहायता का न दिया जाना – आदेश-पत्रिका से विधिक सहायता न दिए जाने की पुष्टि – विचारण न्यायालय के अभिलेख में आदेश-पत्रिका के परिशीलन से पता चलता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी को राज्य के खर्चे पर वकील उपलब्ध कराने का अवसर नहीं दिया गया है, अतः ऐसा विचारण न्यायोचित नहीं है और अपास्त किए जाने योग्य है तथा नए सिरे से विचारण किए जाने के लिए अभियुक्त-अपीलार्थी को विधिक सहायता उपलब्ध कराना आवश्यक है ।

मोहम्मद नसीम रजा रहमानी उर्फ **मुन्ना** बनाम **बिहार राज्य** 109

– धारा 362 – न्यायालय द्वारा आरोप पत्र में संशोधन किया जाना धारा 362 के अधीन उपबंधित वर्जन

पृष्ठ संख्या

के अंतर्गत नहीं आता है – अतः उक्त धारा के उपबंध वर्तमान मामले में लागू नहीं हैं ।

सत्रजीत रॉय बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** 11

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – सबूत – अभियुक्त व्यक्ति के बारे में यह अभिकथन किया जाना कि उसके द्वारा बांस की छड़ और स्वाल से मृतक की हत्या की – यदि शवपरीक्षण रिपोर्ट से यह निष्कर्ष निकाला गया कि सिर की क्षति के कारण मृत्यु हुई तथा मृत्यु की प्रकृति मानवघाती है तथा अभियुक्त से बांस की छड़ और स्वाल की बरामदगी हुई तथा न्यायालयिक प्रयोगशाला रिपोर्ट के अनुसार बांस की छड़ रक्त-रंजित नहीं पाई गई और आयुध के रूप में स्वाल का प्रयोग नहीं किया गया – मामले में न्यायिकेतर या अंतिम बार एक साथ देखे जाने का कोई साक्ष्य नहीं है तो अभियुक्त दोषमुक्त होने का हकदार है ।

बांधन बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** 81

– धारा 302 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32] – हत्या – साक्ष्य का मूल्यांकन – अभियुक्त द्वारा मृतका पर छुरे से वार किया जाना – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य की शवपरीक्षण और न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट से संपुष्टि – अपराध में प्रयोग किए गए आयुध की बरामदगी – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य की संपुष्टि शवपरीक्षण रिपोर्ट और न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट से होती है और साथ ही साक्षी द्वारा आयुध

पृष्ठ संख्या

की बरामदगी भी साबित हुई है जिसकी बनावट मृतका को कारित क्षतियों से मेल खाती है, अतः अपराध कारित करने संबंधी अपीलार्थी का हेतु साबित होता है और उसकी दोषसिद्धि में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

श्रीनाथ बनाम **राज्य** 87

– धारा 306 और 107 – आत्महत्या का दुष्प्रेरण – जब अभियुक्त अपने कृत्य या अपने निरन्तर आचरण द्वारा ऐसी परिस्थितियां पैदा कर देता है कि मृतक के पास आत्महत्या के सिवाय कोई विकल्प न बचे, तब अभियुक्त आत्महत्या के दुष्प्रेरण का दोषी होगा अन्यथा नहीं ।

हरिकृष्णन बनाम **केरल राज्य** 58

– धारा 306 और 107 [दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 और 154] – आत्महत्या का दुष्प्रेरण – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का अभिखंडित किया जाना – वर्ष 2010 और 2011 में बैंक द्वारा ऋण नामंजूर किया जाना और वर्ष 2012 में आहत द्वारा आत्महत्या किया जाना – अभियुक्त के कृत्य और मृतका के कृत्य के बीच सामीप्य का न पाया जाना – ऋण आवेदन बैंक के उच्च अधिकारियों द्वारा खारिज किया गया है और वह भी घटना से काफी समय पूर्व, अतः दोनों कृत्यों के बीच सीधा संबंध और सामीप्य न पाए जाने पर दुष्प्रेरण का अपराध गठित नहीं होता है और आवेदक के विरुद्ध की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट न्यायोचित नहीं है ।

हरिकृष्णन बनाम **केरल राज्य** 58

पृष्ठ संख्या

– धारा 306 और 107 – आत्महत्या का दुष्प्रेरण – आहत द्वारा यह कहा जाना कि अगर ऋण मंजूर न किया गया तो वह आत्महत्या कर लेगी – क्रोध में आकर या भावुक होकर अनाशयित रूप से अभियुक्त द्वारा अभिकथित शब्दों का प्रयोग किया जाना – अभियुक्त/आवेदक द्वारा अभिकथित रूप से पीड़िता से यह क्रोध में या भावुक होकर यह कहना कि 'जाओ और आत्महत्या कर लो', आपराधिक मनःस्थिति के अभाव में आत्महत्या के दुष्प्रेरण की कोटि में नहीं आ सकता ।

हरिकृष्णन बनाम **केरल राज्य** 58

– धारा 323, 354, 341 और 53 – दंड की मात्रा – अपराध के समय अभियुक्त की आयु 18 वर्ष – पहले से भोगे गए कारावास की अवधि का पर्याप्त पाया जाना – अपराध के समय अभियुक्त की आयु मात्र 18 वर्ष थी और उसने काफी लंबे समय तक विचारण प्रक्रिया की पीड़ा को सहन किया है, अत: उसके द्वारा पहले से भोगे गए कारावास की अवधि जितने कारावास का दंड दिया जाना न्यायोचित है ।

मोहम्मद सलीम उर्फ **सलीम अंसारी** बनाम **उत्तराखंड राज्य** 1

– धारा 354, 323 और 341 – क्षति, महिला के साथ छेड़छाड़ और अवरोध – अभियुक्त द्वारा आहत को उठाकर जमीन पर पटका जाना – परिणामस्वरूप क्षति कारित होना - साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि अभियुक्त ने आहत को उठाया था और जमीन पर पटका था जिसके

पृष्ठ संख्या

परिणामस्वरूप आहत को क्षतियां पहुंचीं, अतः उक्त अपराध के लिए अभियुक्त की दोषसिद्धि न्यायोचित है ।

मोहम्मद सलीम उर्फ **सलीम अंसारी** बनाम **उत्तराखंड राज्य** 1

– धारा 376(2)(च) (2013 के संशोधन के पूर्व) [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 164] – अप्राप्तवय कन्या के साथ बलात्संग – मजिस्ट्रेट के समक्ष आहत का कथन धारा 164 के अधीन अभिलिखित न किया जाना – आहत का उत्तर देने की स्थिति में न पाया जाना – अभियोजन पक्षकथन का प्रभावित न होना – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा आहत को धमकी दी गई है कि वह बलात्संग की घटना के संबंध में किसी को न बताए, आहत के भयोपरत होने के कारण वह अपना कथन धारा 164 के अधीन न दे सकी किन्तु न्यायालय में अभियोजन पक्षकथन का समर्थन किया है, अतः धारा 164 के अधीन आहत का कथन अभिलिखित न किए जाने से न्यायालय में दिया गया उसका सारभूत साक्ष्य खारिज नहीं किया जा सकता ।

पंचू मंडल उर्फ **पंचू गोपाल मंडल** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** 28

– धारा 376(2)(च) – बलात्संग – आहत द्वारा प्रतिरोध किए जाने के साक्ष्य का अभाव – अपीलार्थी द्वारा आहत पर बल प्रयोग किया जाना – अपीलार्थी 29-30 वर्ष का नवयुवक है जिसने 7 वर्ष की नाजुक कन्या का एक हाथ से बलपूर्वक मुंह बन्द किया और दूसरे हाथ से उसको दबोचकर रखा, ऐसी स्थिति में आहत

पृष्ठ संख्या

द्‌वारा प्रतिरोध न किया जाना और शोर न किया जाना स्वभाविक है जिससे अभियोजन पक्षकथन को असम्भावी नहीं ठहराया जा सकता ।

पंचू मंडल उर्फ **पंचू गोपाल मंडल** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** 28

– धारा 376(2)(च) – बलात्संग – आहत की आयु से संबंधित दस्तावेजी साक्ष्य का उपलब्ध न होना – स्वयं आहत द्‌वारा अपनी आयु बताना – आहत का उपचार करने वाले चिकित्सक की परीक्षा न कराना – अन्वेषण में आई कमी का अभियोजन पक्षकथन पर प्रभाव न पड़ना – आहत की आयु से संबंधित कोई भी दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है किन्तु आहत द्‌वारा उसकी आयु बताई गई है और आहत का उपचार करने वाले चिकित्सक की परीक्षा न कराना अन्वेषण अभिकरण की अयोग्यता कही जा सकती है किन्तु इससे अभियोजन पक्षकथन संदिग्ध नहीं हो सकता क्योंकि आहत का साक्ष्य अन्यथा भी विश्वसनीय प्रतीत होता है जिसकी पुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से भी होती है और इस प्रकार अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित है ।

पंचू मंडल उर्फ **पंचू गोपाल मंडल** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** 28

– धारा 379 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – चोरी – कान की बाली और गले का हार चोरी किए जाने का अभिकथन – चोरी किए गए सामान का बरामद न होना – साक्षियों द्‌वारा सामान का विवरण न दिया जाना – अभियुक्त से चोरी किया गया सामान बरामद नहीं किया गया है और न ही इत्तिलाकर्ता

पृष्ठ संख्या

एवम् अन्य साक्षियों द्वारा उस सामान का कोई विवरण दिया गया है, अतः धारा 379 के अधीन अपराध की दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं है ।

मोहम्मद सलीम उर्फ **सलीम अंसारी** बनाम **उत्तराखंड राज्य** 1

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 32 – मृत्युकालिक कथन – ग्राह्यता – ऋण की अदायगी न किए जाने को लेकर अपीलार्थी द्वारा अभिकथित रूप से हत्यात्मक हमला किया जाना – मृतका द्वारा अपने पति की उपस्थिति में अपने पिता को अपनी मृत्यु के कुछ पूर्व मृत्यु से संबंधित कथन किया गया है, ऐसा कथन धारा 32 के अधीन मृत्युकालिक कथन की कोटि में आएगा ।

श्रीनाथ बनाम **राज्य** 87

मोहम्मद सलीम उर्फ सलीम अंसारी

बनाम

उत्तराखंड राज्य

(2006 की दांडिक अपील सं. 247)

तारीख 17 दिसंबर, 2018

न्यायमूर्ति अनिल कुमार चौधरी

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 354, 323 और 341 – क्षति, महिला के साथ छेड़छाड़ और अवरोध – अभियुक्त द्वारा आहत को उठाकर जमीन पर पटका जाना – परिणामस्वरूप क्षति कारित होना - साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि अभियुक्त ने आहत को उठाया था और जमीन पर पटका था जिसके परिणामस्वरूप आहत को क्षतियां पहुंचीं, अत: उक्त अपराध के लिए अभियुक्त की दोषसिद्धि न्यायोचित है ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 379 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – चोरी – कान की बाली और गले का हार चोरी किए जाने का अभिकथन – चोरी किए गए सामान का बरामद न होना – साक्षियों द्वारा सामान का विवरण न दिया जाना – अभियुक्त से चोरी किया गया सामान बरामद नहीं किया गया है और न ही इत्तिलाकर्ता एवम् अन्य साक्षियों द्वारा उस सामान का कोई विवरण दिया गया है, अत: धारा 379 के अधीन अपराध की दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं है ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 323, 354, 341 और 53 – दंड की मात्रा – अपराध के समय अभियुक्त की आयु 18 वर्ष – पहले से भोगे गए कारावास की अवधि का पर्याप्त पाया जाना – अपराध के समय अभियुक्त की आयु मात्र 18 वर्ष थी और उसने काफी लंबे समय तक विचारण प्रक्रिया की पीड़ा को सहन किया है, अत: उसके द्वारा पहले से

भोगे गए कारावास की अवधि जितने कारावास का दंड दिया जाना न्यायोचित है ।

संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि तारीख 2 नवंबर, 1996 को अपराह्न 6.00 बजे जब इत्तिलाकर्ता (आहत) शौच के लिए गई थी तब अपीलार्थी-अभियुक्त ने उसे देखकर उठा लिया और जमीन पर पटक दिया और उसके साथ बलात्कार करने का प्रयास किया । आहत के शोर मचाने पर उसकी चचिया सास भागती हुई घटनास्थल पर आयी जिसे देखकर अभियुक्त-अपीलार्थी आहत की कान की बाली और गले से चांदी का हार छीन कर भाग गया । इस दौरान इत्तिलाकर्ता-आहत के कान में क्षति कारित हुई और जमीन में पटके जाने के कारण उसकी पीठ में दर्द होने लगा जिसके कारण वह चल न सकी । इत्तिलाकर्ता द्वारा प्रस्तुत की गई लिखित रिपोर्ट के आधार पर पुलिस ने जमुआ पुलिस थाने में मामला सं. 195/1996 दर्ज किया और मामले का अन्वेषण आरंभ किया । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् पुलिस ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने के पश्चात् अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 323, 341, 376/511 और 379 के अधीन दंडनीय अपराध के अधीन आरोप विरचित किए गए । अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा दोषी न होने का अभिवाक् किए जाने पर उसका विचारण किया गया । अपीलार्थी ने यह अपील 1997 के सेशन विचारण मामला सं. 34 में विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय-IX, गिरिडीह द्वारा तारीख 24 दिसंबर, 2005 को पारित दोषसिद्धि के उस निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध की है जिसके द्वारा और जिसके अधीन अपीलार्थी को दोषी अभिनिर्धारित किया गया है । इस आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई । अपील भागत: मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – ऐसी परिस्थितियों में, इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि अभियुक्त-अपीलार्थी को संदेह का लाभ दिए जाने के लिए यह एक उचित मामला है, जहां तक दंड संहिता की धारा 379 के अधीन दंडनीय अपराध का संबंध है, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध युक्तियुक्त संदेह के परे आरोप सिद्ध करने के लिए

अपर्याप्त है । जहां तक दंड संहिता की धारा 354/323 और धारा 341 के अधीन दंडनीय अपराध का संबंध है अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य, जैसाकि ऊपर चर्चा की गई है, यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि अभियुक्त-अपीलार्थी ने आहत को उठाया था और फिर जमीन पर पटका है जिससे उसे क्षति कारित हुई है । दंड संहिता की धारा 354/323/341 के अधीन दंडनीय अपराध के प्रत्येक आरोप के संघटक साबित करने के लिए पर्याप्त है । न्यायालय में दी गई दलीलों को सुनने और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि आहत (अभि. सा. 4) ने मात्र यह कथन किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी ने उसे उठाया था और जमीन पर पटक दिया था और उसने यह नहीं बताया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी ने विशिष्ट रूप से और क्या कृत्य किया जिससे इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके कि वह बलपूर्वक दुष्कर्म करना चाहता था । उसने केवल यह कथन किया है कि उसकी चूड़ियां टूट गई थीं । इसलिए अगर किसी महिला को उठाया जाए और जमीन पर पटका जाए तो उस कृत्य से उसकी चूड़ियां टूट सकती है । अभि. सा. 3 ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी इससे अधिक कुछ न कर सका था क्योंकि वह (अभि. सा. 3) घटना स्थल पर पहुंच गया था । अभि. सा. 2 घटना घटित होने के बाद का साक्षी है अर्थात् अनुश्रुत साक्षी है । उसका साक्ष्य इस मामले में अधिक महत्वपूर्ण नहीं है । जहां तक अभि. सा. 1 का संबंध है वह भी घटना के बाद का साक्षी है । अत: जहां तक अभियोजन पक्षकथन का संबंध है उसका परिसाक्ष्य भी अधिक महत्वपूर्ण नहीं है । जहां तक दंड संहिता की धारा 379 के अधीन दंडनीय अपराध का संबंध है, अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा छीने गए आभूषणों के उचित वर्णन से संबंधित कोई भी साक्ष्य नहीं है । किसी भी साक्षी द्वारा इन आभूषणों का वजन या कीमत नहीं बताई जा सकी है । ये आभूषण मामले के अन्वेषण के दौरान बरामद नहीं किए गए हैं । चूंकि अन्वेषण अधिकारी की परीक्षा न कराए जाने का कोई ठोस कारण नहीं है, इसलिए इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि चोरी किया गया अभिकथित सामान अभियुक्त-अपीलार्थी से उस समय बरामद नहीं किया जा सका है जब उसे पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया था । जहां तक दंड की मात्रा का संबंध है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि घटना के समय अपीलार्थी की आयु

मात्र 18 वर्ष थी और वह लगभग दो दशक से अधिक समय से दांडिक विचारण की यातना झेल रहा है क्योंकि अभिकथित घटना 2 नवंबर, 1996 को घटित हुई है और काफी लंबे समय तक वह अभिरक्षा में रहा है, जैसाकि अभियुक्त-अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा ठीक ही निवेदन किया है, दंड संहिता की धारा 354 और 323 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दंड की मात्रा घटाकर पहले से भोगे गए कारावास जितनी की जाती है और धारा 341 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए अधिनिर्णीत दंड की मात्रा कायम रखी जाती है । (पैरा 13 और 14)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2006 की दांडिक अपील सं. 247.

1997 के सेशन विचारण मामला सं. 34 में विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय-IX, गिरिडीह द्वारा तारीख 24 दिसंबर, 2005 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री पी. सी. सिन्हा

प्रत्यर्थी की ओर से अपर लोक अभियोजक

आदेश

न्यायमूर्ति अनिल कुमार चौधरी – अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल और प्रत्यर्थी राज्य की ओर से विद्वान् अपर लोक अभियोजक की सुनवाई की गई है ।

2. अपीलार्थी ने यह अपील 1997 के सेशन विचारण मामला सं. 34 में विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय-IX, गिरिडीह द्वारा तारीख 24 दिसंबर, 2005 को पारित दोषसिद्धि के उस निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध की है जिसके द्वारा और जिसके अधीन अपीलार्थी को दोषी अभिनिर्धारित किया गया है और निम्न सारणी में उल्लिखित अपराधों के लिए दंडादिष्ट किया गया है :-

धारा	दंड
दंड संहिता की धारा 354	तीन वर्ष का कठोर कारावास
दंड संहिता की धारा 323	एक वर्ष का कठोर कारावास
दंड संहिता की धारा 341	एक वर्ष का कठोर कारावास
दंड संहिता की धारा 379	एक मास का कठोर कारावास

3. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि तारीख 2 नवंबर, 1996 को अपराह्न 6.00 बजे जब इत्तिलाकर्ता (आहत) शौच के लिए गई थी तब अपीलार्थी-अभियुक्त ने उसे देखकर उठा लिया और जमीन पर पटक दिया और उसके साथ बलात्कार करने का प्रयास किया । आहत के शोर मचाने पर उसकी चचिया सास भागती हुई घटनास्थल पर आयी जिसे देखकर अभियुक्त-अपीलार्थी आहत की कान की बाली और गले से चांदी का हार छीन कर भाग गया । इस दौरान इत्तिलाकर्ता-आहत के कान में क्षति कारित हुई और जमीन में पटके जाने के कारण उसकी पीठ में दर्द होने लगा जिसके कारण वह चल न सकी । इत्तिलाकर्ता द्वारा प्रस्तुत की गई लिखित रिपोर्ट के आधार पर पुलिस ने जमुआ पुलिस थाने में मामला सं. 195/1996 दर्ज किया और मामले का अन्वेषण आरंभ किया । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् पुलिस ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने के पश्चात् अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 323, 341, 376/511 और 379 के अधीन दंडनीय अपराध के अधीन आरोप विरचित किए गए । अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा दोषी न होने का अभिवाक् किए जाने पर उसका विचारण किया गया ।

4. अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन के समर्थन में कुल मिलाकर चार साक्षियों की परीक्षा कराई ।

5. इत्तिलाकर्ता-आहत इस मामले में अभि. सा. 4 है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि न्यायालय में उसकी परीक्षा कराए जाने के लगभग 8 वर्ष पूर्व यह घटना घटित हुई थी । अपराह्न 6 बजे जब वह गांव में शौच के लिए जा रही थी तब अभियुक्त-अपीलार्थी ने उसे दबोच लिया और पटक दिया और वह उसके साथ बलपूर्वक दुष्कर्म करना चाहता था । उसकी चूड़ियां टूट गई थीं । उसकी चचिया सास वहां आई और अभियुक्त-अपीलार्थी वहां से भाग गया । जब वह वहां से भाग रहा था तब उसने आहत की सोने की कान की बाली और चांदी का गले का हार छीनकर भाग गया जिससे आहत के कान पर क्षति कारित हुई । उसका जमुआ में उपचार किया गया । आहत ने अभियुक्त-अपीलार्थी को न्यायालय में पहचान कर बताया । आहत ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह

कथन किया है कि वह घटना की तारीख नहीं बता सकती किन्तु उसे इतना याद है कि वह कार्तिक का महीना था । अपनी प्रतिपरीक्षा में उसने यह भी कथन किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी उसी के ग्राम का रहने वाला है । आहत (अभि. सा. 4) को ये आभूषण उसकी माता द्वारा दिए गए थे । वह आभूषणों का वजन और मूल्य नहीं बता सकती । उसके कान से रक्त बहने लगा था जो उसकी साड़ी एवम् जमीन पर गिरा ।

6. नारायण यादव (अभि. सा. 1) ने यह कथन किया है कि यह घटना न्यायालय में उसकी परीक्षा कराए जाने से 5 वर्ष पूर्व घटित हुई थी । उसने अभियुक्त-अपीलार्थी को घटनास्थल पर पहले से बैठा हुआ देखा था । घटनास्थल से घर वापस आने के पांच मिनट बाद अभि. सा. 1 को शोर सुनाई दिया जिस पर वह दौड़ता हुआ गया । अभि. सा. 1 ने देखा कि इत्तिलाकर्ता आहत (अभि. सा. 4) घटनास्थल पर पड़ी हुई है । अभियुक्त-अपीलार्थी ने उसके साथ बलात्संग करने का प्रयास किया । आहत को उपचार के लिए एक ट्रेक्टर से जमुआ अस्पताल ले जाया गया । पूछने पर आहत ने बताया कि अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा उसके साथ बलात्संग किया गया है । अभि. सा. 1 ने अभियुक्त-अपीलार्थी को सोने की बाली और चांदी का हार लेकर भागते हुए देखा था । उसने अभियुक्त-अपीलार्थी की शनाख्त न्यायालय में की । अभि. सा. 1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में घटनास्थल की चाहरदीवारी का उल्लेख किया है । वह भी घटनास्थल पर मौजूद था । उसने अभियुक्त-अपीलार्थी को आहत के साथ बलात्संग करने का प्रयास करते देखा था । सबसे पहले आहत की चचिया सास घटनास्थल पर पहुंची थी । उस समय आहत की पीठ में दर्द हो रहा था । वह उठकर खड़ी नहीं हो पा रही थी । उसके कान और गर्दन पर खरोंचें आई हुई थीं । अभि. सा. 1 ने पुलिस को बताया कि वह खेत पर गया था और उसने अभियुक्त-अपीलार्थी को वहां बैठा हुआ देखा था ।

7. देवकी यादव (अभि. सा. 2) घटना के बाद का एक स्वतंत्र साक्षी है । उसने यह कथन किया है कि वह घटना के समय अपने घर पर था । घटनास्थल पहुंच कर उसने यह देखा कि इत्तिलाकर्ता आहत को कंधों पर डालकर लाया गया था । पूछे जाने पर अभि. सा. 2 को यह बताया

गया कि अभियुक्त-अपीलार्थी ने उसे जमीन पर पटका था और उसके साथ बलात्संग करने का प्रयास किया था और उसने सोने की बाली और चांदी की जंजीर भी छीनी थी । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह कथन किया है कि उसने वही अभिसाक्ष्य दिया है जो उसने सुना था ।

8. झमिया देवी (अभि. सा. 3), इत्तिलाकर्ता आहत की सास है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि यह घटना अपराहन 6 बजे घटित हुई थी । इत्तिलाकर्ता शौच करने गई थी । इत्तिलाकर्ता ने शोर मचाया । अभि. सा. 3 और अन्य लोग दौड़कर वहां पहुंचे । आहत अर्थात् इत्तिलाकर्ता दर्द से कराह रही थी और उसने बताया कि वह अब नहीं बचेगी । अभियुक्त-अपीलार्थी आहत के पास खड़ा था । झमिया देवी (अभि. सा. 3) ने कपड़े नहीं देखे । इत्तिलाकर्ता की चूड़ियां टूटी हुई थीं । इत्तिलाकर्ता ने उसे बताया कि अभियुक्त-अपीलार्थी ने उसकी सोने की बाली और हार छीन लिया है । अभियुक्त-अपीलार्थी इससे ज्यादा और कुछ नहीं कर सका क्योंकि वहां पर अन्य व्यक्ति भी जमा हो गए थे । इस साक्षी ने अभियुक्त-अपीलार्थी की शनाख्त न्यायालय में की है । अपनी प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने यह कथन किया है कि उसे घटना की तारीख याद नहीं है । यह घटना कार्तिक के महीने में घटित हुई थी । झमिया देवी (अभि. सा. 3) ने पहली बार न्यायालय में इस घटना के बारे में कथन दिया । इससे पहले कभी भी उसका कथन अभिलिखित नहीं किया गया था । यह साक्षी नहीं बता सकी है कि कान की बाली और हार कहां से क्रय किए गए थे और उनका वजन कितना है ।

9. अभियोजन साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने की प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभियुक्त-अपीलार्थी का कथन अभिलिखित किया गया जिसमें उसने अपने विरुद्ध रखी गई सभी परिस्थितियों से इनकार किया और निर्दोष होने का अभिवाक् किया ।

10. अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी दोनों साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात् निचले न्यायालय ने अभियुक्त- अपीलार्थी को ऊपर उल्लिखित रूप में दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया ।

11. अभियुक्त-अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री पी. सी. सिन्हा ने

यह दलील दी है कि विद्वान् निचले न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का उचित परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन नहीं किया है और साक्षियों के परिसाक्ष्यों में आए विरोधाभासों पर विचार न करके गलती की है। अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई है कि निचला न्यायालय इस तथ्य पर विचार करने में असफल रहा है कि अन्वेषण अधिकारी की परीक्षा न कराए जाने से प्रतिरक्षा पक्ष के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है मानो साक्षियों की प्रतिपरीक्षा के समय उनका ध्यान उनके उन कथनों की ओर दिलाया गया हो जो उन्होंने पुलिस को दिए थे फिर भी उन कथनों को अन्वेषण अधिकारी को नहीं दिखाया गया। इसलिए बिना किसी ठोस कारण के अन्वेषण अधिकारी की परीक्षा न कराए जाने से प्रतिरक्षा पक्ष साक्षियों के दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन पुलिस को दिए गए कथनों और न्यायालय में दिए गए कथनों के बीच आए विरोधाभासों को अभिलेख पर नहीं ला सका। यह भी दलील दी गई है कि अभिकथित सोने की बाली और चांदी के हार जिसे कुछ साक्षियों ने जंजीर भी कहा है के विस्तृत वर्णन के न होने पर और इन आभूषणों का अपीलार्थी के कब्जे से बरामद न होने के साक्ष्य की अनुपस्थिति में विद्वान् निचले न्यायालय को अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 354 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध नहीं करना चाहिए था। यह भी दलील दी गई है कि इस तथ्य पर विचार करते हुए कि अभियुक्त- अपीलार्थी की आयु घटना के दिन 18 वर्ष थी और निर्णय की तारीख अर्थात् 24 दिसंबर, 2005 को 26 वर्ष बताई गई है और यह कि वह दो दशकों से अधिक समय से दांडिक अभियोजन की पीड़ा से जूझ रहा है, यदि अपीलार्थी की दोषसिद्धि कायम रखी जाती है तब उसे तारीख 6 नवंबर, 1996 से 3 दिसंबर, 1997 तक और 24 दिसंबर, 2005 से 4 मार्च, 2006 तक पहले से भोगे गए कारावास की अवधि से दंडादिष्ट किया जाए।

12. इसके प्रतिकूल विद्वान् अपर लोक अभियोजक ने यह दलील दी है कि अभि. सा. 4 इस घटना की एकमात्र साक्षी है और उसने स्पष्ट रूप से अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा कारित किए गए उन अपराधों के सभी संघटकों से संबंधित कथन किया है जिनके लिए अभियुक्त-अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया गया है और अभि. सा. 4 के परिसाक्ष्य की संपुष्टि अभि.

सा. 1, 2 और 3 के साक्ष्य से होती है । इसलिए, यह निवेदन किया गया है कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य सभी उन अपराधों के आरोपों को साबित करने के लिए पर्याप्त है जिनके लिए उसे दोषसिद्ध किया गया है और अभियुक्त-अपीलार्थी को दिया गया दंडादेश भी उचित है ।

13. न्यायालय में दी गई दलीलों को सुनने और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि आहत (अभि. सा. 4) ने मात्र यह कथन किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी ने उसे उठाया था और जमीन पर पटक दिया था और उसने यह नहीं बताया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी ने विशिष्ट रूप से और क्या कृत्य किया जिससे इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके कि वह बलपूर्वक दुष्कर्म करना चाहता था । उसने केवल यह कथन किया है कि उसकी चूड़ियां टूट गई थीं । इसलिए अगर किसी महिला को उठाया जाए और जमीन पर पटका जाए तो उस कृत्य से उसकी चूड़ियां टूट सकती है । अभि. सा. 3 ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी इससे अधिक कुछ न कर सका था क्योंकि वह (अभि. सा. 3) घटना स्थल पर पहुंच गया था । अभि. सा. 2 घटना घटित होने के बाद का साक्षी है अर्थात् अनुश्रुत साक्षी है । उसका साक्ष्य इस मामले में अधिक महत्वपूर्ण नहीं है । जहां तक अभि. सा. 1 का संबंध है वह भी घटना के बाद का साक्षी है । अत: जहां तक अभियोजन पक्षकथन का संबंध है उसका परिसाक्ष्य भी अधिक महत्वपूर्ण नहीं है । जहां वह दंड संहिता की धारा 379 के अधीन दंडनीय अपराध का संबंध है, अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा छीने गए आभूषणों के उचित वर्णन से संबंधित कोई भी साक्ष्य नहीं है । किसी भी साक्षी द्वारा इन आभूषणों का वजन या कीमत नहीं बताई जा सकी है । ये आभूषण मामले के अन्वेषण के दौरान बरामद नहीं किए गए हैं । चूंकि अन्वेषण अधिकारी की परीक्षा न कराए जाने का कोई ठोस कारण नहीं है, इसलिए इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि चोरी किया गया अभिकथित सामान अभियुक्त-अपीलार्थी से उस समय बरामद नहीं किया जा सका है जब उसे पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया था ।

14. ऐसी परिस्थितियों में, इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि अभियुक्त-अपीलार्थी को संदेह का लाभ दिए जाने के लिए यह एक

उचित मामला है, जहां तक दंड संहिता की धारा 379 के अधीन दंडनीय अपराध का संबंध है, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध युक्तियुक्त संदेह के परे आरोप सिद्ध करने के लिए अपर्याप्त है । जहां तक दंड संहिता की धारा 354/323 और धारा 341 के अधीन दंडनीय अपराध का संबंध है अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य, जैसाकि ऊपर चर्चा की गई है, यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि अभियुक्त-अपीलार्थी ने आहत को उठाया था और फिर जमीन पर पटका है जिससे उसे क्षति कारित हुई है । दंड संहिता की धारा 354/323/341 के अधीन दंडनीय अपराध के प्रत्येक आरोप के संघटक साबित करने के लिए पर्याप्त है । जहां तक दंड की मात्रा का संबंध है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि घटना के समय अपीलार्थी की आयु मात्र 18 वर्ष थी और वह लगभग दो दशक से अधिक समय से दांडिक विचारण की यातना झेल रहा है क्योंकि अभिकथित घटना 2 नवंबर, 1996 को घटित हुई है और काफी लंबे समय तक वह अभिरक्षा में रहा है, जैसाकि अभियुक्त-अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा ठीक ही निवेदन किया है, दंड संहिता की धारा 354 और 323 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दंड की मात्रा घटाकर पहले से भोगे गए कारावास जितनी की जाती है और धारा 341 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए अधिनिर्णीत दंड की मात्रा कायम रखी जाती है ।

15. तद्नुसार, अपील का निपटारा किया जाता है ।

16. अभिलेख का परिशीलन करने पर यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी मोहम्मद सलीम **उर्फ** सलीम अंसारी जमानत पर है और चूंकि वह दंडादेश पहले ही भोग चुका है इसलिए उसे उसके बंधपत्रों से उन्मोचित किया जाता है ।

17. विद्वान् निचले न्यायालय का अभिलेख इस निर्णय की एक प्रति के साथ उसे तत्काल वापस भेजा जाता है ।

तद्नुसार आदेश किया गया ।

अस.

सत्रजीत रॉय

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य

(2018 की दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 2533)

तारीख 12 जून, 2019

न्यायमूर्ति आशा अरोड़ा

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 216 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 306, 302 और 376] – आरोप पत्र में संशोधन – पूर्व में दंड संहिता की धारा 306 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया जाना – तत्पश्चात् वास्तविक परिवादी, पीड़ित मृतका के पिता द्वारा आवेदन किए जाने पर आरोप पत्र को संशोधित करके दंड संहिता की धारा 302 और 376 के अधीन आरोपों का विरचित किया जाना – चुनौती – दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन न्यायालय में निर्णय की उद्घोषणा से पूर्व किसी भी समय आरोपों में परिवर्तन करने या उनमें किसी अन्य आरोप को सम्मिलित करने की शक्ति निहित है – शव-परीक्षण रिपोर्ट और अन्य परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर अभियुक्त के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 और 306 के अधीन प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है अतः आरोप पत्र में संशोधन किया जाना न्यायोचित है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 362 – न्यायालय द्वारा आरोप पत्र में संशोधन किया जाना धारा 362 के अधीन उपबंधित वर्जन के अंतर्गत नहीं आता है – अतः उक्त धारा के उपबंध वर्तमान मामले में लागू नहीं हैं ।

वर्तमान पुनरीक्षण याचिका का निपटारा करने हेतु संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि विचारण न्यायालय ने मामला संबंधी डायरी में अन्तर्विष्ट सामग्रियों के परिशीलन के पश्चात् अपने तारीख 11 अप्रैल, 2018 के आदेश द्वारा अभियुक्त/याची के विरुद्ध दंड संहिता की धारा

306 के अधीन आरोप विरचित किए थे किन्तु एक पश्चात्वर्ती तारीख, अर्थात् तारीख 21 अगस्त, 2018 को पूर्वोक्त आरोप में इस मामले के विरोधी पक्षकार सं. 2/वास्तविक परिवादी द्वारा फाइल किए गए आवेदन के आधार पर उपान्तरण किया गया । आक्षेपित आदेश द्वारा विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने अभियुक्त-याची के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 और धारा 376 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप विरचित किए । पूर्वोक्त याचिका में इस बात पर भी बल दिया गया कि विरोधी पक्षकार सं. 2/वास्तविक परिवादी को आरोप में उपान्तरण करने हेतु कोई आवेदन फाइल करने के संबंध में सुने जाने का कोई अधिकार उपलब्ध नहीं है क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन यह शक्ति अनन्य रूप से न्यायालय में निहित है और वास्तविक परिवादी या अभियुक्त या अभियोजन अधिकार के रूप में कोई आवेदन फाइल करके विरचित किए गए आरोप में कोई परिवृद्धि करने या उसमें कोई उपान्तरण करने का अनुरोध नहीं कर सकता । यह और अनुयाचना की गई है कि विरचित किए गए किसी आरोप में उपान्तरण करने की शक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 द्वारा वर्जित है क्योंकि एक बार आरोप विरचित कर दिए जाने पर आरोप विरचित किए जाने संबंधी आदेश अन्तिमता प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार ऐसे अन्तिम आदेश में, उसमें कोई लिपिकीय या गणित संबंधी त्रुटि का सुधार करने के सिवाय कोई परिवर्तन किया जाना या उसका पुनर्विलोकन अनुज्ञेय नहीं है । उक्त निर्णय से व्यथित होकर याची/अभियुक्त ने इस निर्णय को चुनौती देते हुए 2018 की दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 2533 फाइल की । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन निहित शक्ति यद्यपि न्यायालय की अनन्य शक्ति है फिर भी कतिपय आपातकालीन परिस्थितियों के अधीन यदि कोई त्रुटि या लोप न्यायालय की सूचना में लाया जाता है या यदि न्यायालय की जानकारी में ऐसी कोई त्रुटि आती है तो विरचित किए गए आरोपों में कोई उपान्तरण या परिवृद्धि, यदि आवश्यक हो, की जा सकती है । विरोधी पक्षकार सं. 2 के विद्वान् काउंसेल ने यह तर्कणा दी है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 के अधीन परिकल्पित वर्जन, दंड संहिता की धारा 216 के अधीन

अन्तर्विष्ट विनिर्दिष्ट उपबंध को प्रक्रिया में न रखते हुए लागू नहीं होता है जो न्यायालय को निर्णय की उद्‌घोषणा से पूर्व कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर किसी आरोप को उपान्तरित या उसमें परिवृद्धि करने में समर्थ बनाता है । (पैरा 3)

ब्लेक्स लॉ डिक्शनरी में "सुने जाने का अधिकार" पद का यह अर्थ दिया गया है कि उससे "किसी मंच पर कोई कार्रवाई लाने या सुने जाने का अधिकार" अभिप्रेत है । श्री पी. रामानाथ अय्यर की पुस्तक द लॉ लैक्सिकन के अनुसार "सुने जाने का अधिकार" पद से "किसी न्यायिक न्यायालय में उपस्थित होने का अधिकार" अभिप्रेत है । सुने जाने के अधिकार से पारंपरिक रूप से यह मत अभिप्रेत है कि ऐसे व्यक्ति को, जो व्यथित है या किसी प्रकार प्रतिकूल रूप से प्रभावित है, न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का अधिकार है, अर्थात् उसके पास न्याय की ईप्सा करते हुए न्यायालय में कोई आवेदन फाइल करने का अधिकार है । भारत में सांविधानिक विधि के विकास के साथ ही किसी व्यक्ति का किसी न्यायालय द्‌वारा सुने जाने के अधिकार संबंधी निर्वचन के रूढ़ीवादी नियम में आमूलचूल परिवर्तन हुआ है और अब सांविधानिक न्यायालय केवल अत्यधिक केवल तकनीकी आधारों पर किसी मुकदमेंबाज कै मामले के संबंध में कार्यवाही किए जाने या उसके दावे को नामंजूर किए जाने के संबंध में उदारवादी मत अपना रहे हैं । अब यह सुस्थापित है कि यदि कोई व्यक्ति किसी मामले के संबंध में पूर्णतया बाहरी व्यक्ति के रूप में पाया जाता है तो केवल उसके पास सुने जाने का अधिकार न होने के आधार पर उसे वाद से बाहर नहीं किया जा सकता । तथापि, दांडिक विचारण मुख्यतः दंड प्रक्रिया संहिता में अधिकथित प्रक्रिया का अनुपालन करते हुए संचालित किया जाता है । परिवादी के सुने जाने का अधिकार न्यायशास्त्र के लिए एक बाहरी अवधारणा है । कोई भी व्यक्ति किसी दांडिक विधि संबंधी कोई कार्यवाही प्रस्ताव ला सकता है सिवाय वहां के जहां किसी अपराध को अधिनियमित या सृजित करने वाला कानून इसके प्रतिकूल उपदर्शित करता है । यह साधारण सिद्धांत इस नीति पर आधारित है कि कोई अपराध, अर्थात् कोई कार्य या लोप जिसे तत्समय प्रवृत्त किसी विधि

द्‌वारा दंडनीय बनाया गया है, किसी ऐसे व्यक्ति, जिसे कोई हानि हुई है, के संबंध में किया गया मात्र कोई अपराध नहीं है अपितु वह समाज के विरुद्ध भी एक अपराध है । अतः, ऐसे अपराधों के संबंध में, जिन्हें समाज के विरुद्ध माना जाता है, राज्य का यह कर्तव्य बन जाता है कि वह अपराधी को दंडित करे । यह सिद्धांत कि कोई भी व्यक्ति किसी दांडिक विधि का सहारा ले सकता है तब तक अक्षुण्ण बना रहता है जब तक कि किसी कानूनी उपबंध द्‌वारा उसके प्रतिकूल उपदर्शित न किया गया हो । लगभग सार्वभौमिक रूप से लागू होने वाला यह सिद्धांत इस नीति पर आधारित है कि कोई अपराध, अर्थात् कोई कार्य या लोप जिसे तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्‌वारा दंडनीय बनाया गया है, किसी ऐसे व्यक्ति, जिसे कोई हानि हुई है, के संबंध में किया गया मात्र कोई अपराध नहीं है अपितु वह समाज के विरुद्ध भी एक अपराध है । समाज अपने व्यवस्थित और शांतिपूर्वक विकास के लिए अपराधी को दंडित करने में दिलचस्पी रखता है । अतः, गंभीर अपराधों के लिए अभियोजन जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य के नाम पर चलाया जाता है जिससे किसी निजी शत्रुता या प्रतिशोध के तत्व को अपवर्जित किया जा सके । यदि शास्तिक कानूनों में अन्तर्निहित लोकनीति इस प्रकार की है तो किसी विधि द्‌वारा दंडनीय बनाए गए किसी कार्य या लोप को, उसके संबंध में कार्यवाही करने के लिए सक्षम प्राधिकारी की सूचना में किस व्यक्ति के द्‌वारा लाया जाता है यह बात तब तक सारवान् या सुसंगत नहीं है जब तक कि कानून इसके प्रतिकूल उपदर्शित न करे । समाज की बेहतरी के लिए अधिनियमित शास्तिक कानूनों के उद्देश्यों में से एक मुख्य उद्देश्य अपराधी को दंडित करने के प्रति समाज की दिलचस्पी भी है इसलिए किन्हीं कार्यवाहियों को प्रारंभ करने के अधिकार को, सिवाय विनिर्दिष्ट कानूनी अपवादों के, दांडिक न्यायशास्त्र के लिए अज्ञात सुने जाने के अधिकार के अनमनीय सूत्र द्‌वारा उसे कम, सीमित या निरुद्ध नहीं किया जा सकता है ।" सुने जाने के अधिकार से संबंधित सिद्धांत दांडिक न्यायशास्त्र के लिए पूर्णतया अपरिचित है । किसी अपराध के किए जाने पर अपराधी को दंडित किया जाना एक सामाजिक आवश्यकता है । समाज यह बात बर्दाश्त नहीं कर सकता कि कोई

अपराधी मात्र ऐसे किसी कारण से अपने दायित्व से बच जाए जिसके कारण सामाजिक प्रदूषण की ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न होंगी जो न तो वांछित हैं और न ही न्यायसंगत हैं और यह स्थान की अवधारणा को ध्यान में न रखते हुए है । (पैरा 4)

वास्तविक परिवादी मृतक पीड़िता का पिता है, जिसने विचारण न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन आरोप में परिवर्तन करने संबंधी आवेदन प्रस्तुत किया था । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 न्यायालय को निर्णय की उद्घोषणा से पूर्व किसी भी समय किसी आरोप में परिवर्तन करने या उसमें परिवृद्धि करने के लिए सशक्त बनाती है । अब यह सुस्थापित है कि न्यायालय में निहित यह शक्ति अनन्य रूप से न्यायालय में निहित है और किसी भी पक्षकार के पास अधिकार के रूप में कोई आवेदन फाइल करके किसी आरोप में परिवर्तन या उसमें इस प्रकार परिवृद्धि का निवेदन करने का कोई अधिकार नहीं है । यह अवश्य है कि यदि आरोप की विरचना में कोई लोप है या अपराध का विचारण करने वाले न्यायालय की जानकारी में ऐसा कोई लोप लाया जाता है तब भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 में उपबंधित किए गए अनुसार आरोप में परिवर्तन या उसमें परिवृद्धि करने की शक्ति सदैव न्यायालय में ही निहित होगी और ऐसी शक्ति न्यायालय को निर्णय की उद्घोषणा से पूर्व किसी भी समय उपलब्ध है । न्यायालय के लिए यह एक समर्थनकारी उपबंध है जिसके द्वारा वह कतिपय आकस्मिक परिस्थितियों में, जो उसकी सूचना में आती हैं या उसकी सूचना में लायी जाती हैं, अपनी इस शक्ति का प्रयोग कर सकता है । ऐसी किसी परिस्थिति में, यदि न्यायालय की जानकारी में यह लाया जाता है कि ऐसी आवश्यकता उत्पन्न हो गई है जिसमें आरोप में परिवर्तन करना या उसमें परिवृद्धि करना आवश्यक हो गया है तो वह स्वविवेक से ऐसा कर सकेगा और इस प्रयोजन के लिए कोई भी आदेश पारित किया जाना आवश्यक नहीं है । ऐसे परिवर्तन या परिवृद्धि के पश्चात् जब अन्तिम निर्णय दिया जाता है तो पक्षकारों के पास यह अधिकार होगा कि वे विधि के अनुसार उन्हें उपलब्ध उपचारों का अवलंब ले सकें । (पैरा 5)

यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा कि पूर्वोक्त निर्णय का अवलंब याची द्वारा लिया गया है किन्तु निर्णय के पैरा 6 के परिशीलन से यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 न्यायालय के लिए एक समर्थनकारी उपबंध है जिसके द्वारा वह कतिपय आकस्मिक परिस्थितियों में, जो उसकी सूचना में आती हैं या उसकी सूचना में लायी जाती हैं, अपनी इस शक्ति का प्रयोग कर सकता है । वर्तमान मामले में, आरोप विरचित करने में हुई त्रुटि या लोप को वास्तविक परिवादी द्वारा विचारण न्यायालय की सूचना में लाया गया और तद्नुसार, न्यायालय द्वारा उस सामग्री जिसकी अनदेखी की गई थी, का परिशीलन करने के पश्चात् आरोप में परिवर्तन किया गया । आक्षेपित आदेश के सुसंगत भाग इस प्रकार हैं कि अभियुक्त द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन फाइल किए गए उन्मोचन आवेदन की सुनवाई की तारीख को विद्वान् अभियोजक ने मृतक के शव पर शव-परीक्षा के समय पाए गए 21 क्षति चिह्नों, जिसके अन्तर्गत यौन हमले से संबंधित चिह्न भी हैं, की प्रकृति को विशिष्ट रूप से उपदर्शित नहीं किया । अन्वेषण अधिकारी द्वारा लाए गए आरोप पत्र को दंड संहिता की धारा 306 के अधीन दंडनीय अपराध हेतु विचारण करने के लिए प्रस्तुत किया गया है । सुनवाई के समय विद्वान् प्रतिरक्षा काउंसेल ने कड़े शब्दों में इस बात पर बल दिया था कि पीड़िता की गर्दन पर पाए गए क्षतियों के चिह्न अनिवार्यतः यह सुझाव देते हैं कि पीड़िता ने आत्महत्या की है । अभियोजन और साथ ही प्रतिरक्षा और विशिष्ट रूप से पुलिस रिपोर्ट द्वारा भ्रमित किए जाने पर इस न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचकर त्रुटि की कि तारीख 16 फरवरी, 2018 के आदेश द्वारा अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 306 के अधीन प्रथमदृष्टया मामला बनता है । अभियोजन की घटना संबंधी व्याख्या के अनुसार यह पाया गया कि मृतक का शव, उस भवन में जिसमें उसका फ्लैट स्थित है, उसके सह-अधिभोगियों द्वारा सतत् प्रयास किए जाने पर जब उसे अभियुक्त द्वारा खोला गया तो फ्लैट के एक कक्ष के भीतर लटका पाया गया था जिसका तात्पर्य यह है कि जब मृतक का शव फ्लैट में पाया गया था उस समय कक्ष के भीतर अभियुक्त व्यक्ति के सिवाय कोई अन्य व्यक्ति मौजूद नहीं

था........................... । इन परिस्थितियों पर विचार करते हुए जिनके अधीन मृतक का शव ऊपर उल्लिखत क्षतियों के चिह्नों, जिनके अन्तर्गत पीड़ित के शव पर काटे जाने के चिह्न और पीड़िता की योनी के योनिच्छद का फटना भी था, के साथ लटका हुआ पाया गया था, अभियुक्त के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302/76 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए प्रथमदृष्टया मामला बनाया गया है । याची की ओर से प्रस्तुत की गई इस दलील में कोई गुणता नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 आरोप में किसी परिवर्तन को वर्जित करती है । इस प्रक्रम पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 के सुसंगत उपबंध को निर्दिष्ट करना सहायक होगा जो इस प्रकार है कि “362. न्यायालय का अपने निर्णय में परिवर्तन न करना – इस संहिता या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा जैसा उपबंधित है उसके सिवाय कोई न्यायालय जब उसने किसी मामले को निपटाने के लिए अपने निर्णय या अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर कर दिए हैं तब लिपिकीय या गणितीय भूल को ठीक करने के सिवाय उसमें कोई परिवर्तन नहीं करेगा या उसका पुनर्विलोकन नहीं करेगा ।” (पैरा 6 और 7)

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के कारण न्यायालय में निर्णय की उद्घोषणा से पूर्व किसी भी समय किसी आरोप में परिवर्तन या परिवृद्धि करने की शक्ति निहित है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के इस विनिर्दिष्ट उपबंध को ध्यान में रखते हुए न्यायालय द्वारा आरोप में परिवर्तन किए जाने के संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 के अधीन उपबंधित वर्जन लागू नहीं है । यह स्पष्ट है कि विचारण न्यायालय ने एक सुसंगत आदेश द्वारा मामले संबंधी डायरी में विद्यमान सामग्री का परिशीलन करके आरोप में परिवर्तन किया था और उसका यह समाधान हो गया था कि अभियुक्त के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302/376 के अधीन दंडनीय अपराधों संबंधी प्रथमदृष्टया मामला बनता है । इस प्रकार आक्षेपित आदेश किसी भी प्रकार की अवैधता या अनियमितता से ग्रस्त नहीं है । अतः, उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना अपेक्षित नहीं है । इस प्रकार, 2018 की दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 2533 को तद्नुसार खारिज किया जाता है । (पैरा 8, 9 और 10)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2017]	(2017) 3 एस. सी. सी. 347 : **पी. कार्तिकालक्ष्मी** बनाम **श्रीगणेश और अन्य ;**	2
[2017]	(2017) 9 एस. सी. सी. 340 = ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 5006 : **रतनलाल** बनाम **प्रहलाद जाट और अन्य;**	4
[2016]	(2016) 6 एस. सी. सी. 699 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 1871 : **अमानुल्ला और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और अन्य ;**	3
[2016]	(2016) 6 एस. सी. सी. 105 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 1197 : **अनंत प्रकाश सिन्हा** उर्फ **अनंत सिन्हा** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य ;**	3
[2008]	(2008) 2 सी. एच. एन. 756 = (2008) क्रि. ला ज. 1183 (कलकत्ता) : **साबुर हुसैन बिस्वास** उर्फ **पलटू** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य ।**	2

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2018 की दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 2533.

2018 के सेशन विचारण मामला सं. 3(4) में विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, त्वरित निपटान तृतीय न्यायालय, बैरकपुर, नार्थ 24-परगना, द्वारा तारीख 21 अगस्त, 2018 को पारित आदेश के विरुद्ध अपील ।

याची की ओर से सर्वश्री सोविक मित्र, अरिन्दम जना और सोम्याजीत चटर्जी

प्रत्यर्थी की ओर से	श्री एस. जी. मुखर्जी, विद्वान् लोक अभियोजक, सुश्री फारया हुसैन, सर्वश्री अयान भट्टाचार्य, शरीकुल हक और समरजीत घोषाल

आदेश

वर्तमान आवेदन द्वारा याची ने तीतागढ़ पुलिस थाने के 2012 के मामला सं. 538, तारीख 15 सितंबर, 2012 से उद्भूत होने वाले भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् दंड संहिता कहा गया है) की धारा 302 के अधीन 2018 के सेशन विचारण मामला सं. 3(4) में विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, त्वरित निपटान तृतीय न्यायालय, बैरकपुर, नार्थ 24-परगना, द्वारा तारीख 21 अगस्त, 2018 को पारित उस आदेश को चुनौती दी है जिसके द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1974 की धारा 216 के अधीन विरोधी पक्षकार सं. 2/वास्तविक परिवादी द्वारा फाइल किए गए आवेदन को मंजूर किया गया था ।

2. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय ने मामला संबंधी डायरी में अन्तर्विष्ट सामग्रियों के परिशीलन के पश्चात् अपने तारीख 11 अप्रैल, 2018 के आदेश द्वारा अभियुक्त/याची के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 306 के अधीन आरोप विरचित किए थे किन्तु एक पश्चात्वर्ती तारीख, अर्थात् तारीख 21 अगस्त, 2018 को पूर्वोक्त आरोप में इस मामले के विरोधी पक्षकार सं. 2/वास्तविक परिवादी द्वारा फाइल किए गए आवेदन के आधार पर उपान्तरित किया गया । आक्षेपित आदेश द्वारा विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने अभियुक्त-याची के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 और धारा 376 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप विरचित किए । **पी. कार्तिकालक्ष्मी** बनाम **श्रीगणेश और अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लेते हुए याची के विद्वान् काउंसेल ने इस बात पर बल दिया कि इस मामले के विरोधी पक्षकार सं. 2/वास्तविक परिवादी को आरोप में उपान्तरण करने हेतु कोई आवेदन फाइल करने के संबंध में सुने जाने

---

[1] (2017) 3 एस. सी. सी. 347.

का कोई अधिकार उपलब्ध नहीं है क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन यह शक्ति अनन्य रूप से न्यायालय में निहित है और वास्तविक परिवादी या अभियुक्त या अभियोजन अधिकार के रूप में कोई आवेदन फाइल करके विरचित किए गए आरोप में कोई परिवृद्धि करने या उसमें कोई उपान्तरण करने का अनुरोध नहीं कर सकता । यह और अनुयाचना की गई है कि विरचित किए गए किसी आरोप में उपान्तरण करने की शक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 द्वारा वर्जित है क्योंकि एक बार आरोप विरचित कर दिए जाने पर आरोप विरचित किए जाने संबंधी आदेश अन्तिमता प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार ऐसे अन्तिम आदेश में, उसमें कोई लिपिकीय या गणित संबंधी त्रुटि का सुधार करने के सिवाय कोई परिवर्तन किया जाना या उसका पुनर्विलोकन अनुज्ञेय नहीं है । अपनी दलील को पुष्ट करने के लिए याची के विद्वान् काउंसेल ने **साबुर हुसैन बिस्वास** उर्फ **पलटू** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया है । यह भी तर्क दिया गया है कि मृतक पीड़िता की शव-परीक्षा रिपोर्ट के परिशीलन से यह बात सामने आती है कि मृतक के शरीर पर पाई गई क्षतियां दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध हेतु मामला बनाने के लिए पर्याप्त नहीं हैं ।

3. उपरोक्त दलीलों को परित्यक्त करते हुए विरोधी पक्षकार सं. 2 के विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय का ध्यान **पी. कार्तिकालक्ष्मी** (उपरोक्त) वाले मामले, जिसका अवलंब याची द्वारा लिया गया है, के निर्णय के पैरा 6 की ओर आकर्षित किया है । पूर्वोक्त सुसंगत पैरा सं. 6 को निर्दिष्ट करते हुए विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन निहित शक्ति यद्यपि न्यायालय की अनन्य शक्ति है फिर भी कतिपय आपातकालीन परिस्थितियों के अधीन यदि कोई त्रुटि या लोप न्यायालय की सूचना में लाया जाता है या यदि न्यायालय की जानकारी में ऐसी कोई त्रुटि आती है तो विरचित किए गए आरोपों में कोई उपान्तरण या परिवृद्धि, यदि आवश्यक हो, की जा सकती है । जहां तक वास्तविक परिवादी के सुने जाने संबंधी अधिकार का प्रश्न है, **अमानुल्ला और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और**

[1] (2008) 2 सी. एच. एन. 756 = (2008) क्रि. ला ज. 1183 (कलकत्ता).

अन्य[1] वाले मामले (के पैरा 19) का हवाला दिया गया है । विरोधी पक्षकार सं. 2 के विद्वान् काउंसेल ने यह तर्कणा दी है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 के अधीन परिकल्पित वर्जन, दंड संहिता की धारा 216 के अधीन अन्तर्विष्ट विनिर्दिष्ट उपबंध को प्रक्रिया में न रखते हुए लागू नहीं होता है जो न्यायालय को निर्णय की उद्घोषणा से पूर्व कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर किसी आरोप को उपान्तरित या उसमें परिवृद्धि करने में समर्थ बनाता है । आरोप में उपान्तरण करने के प्रश्न पर याची की ओर से प्रस्तुत की गई तर्कणा का विरोध करने के लिए विरोधी पक्षकार सं. 2 के विद्वान् काउंसेल ने **अनंत प्रकाश सिन्हा** उर्फ **अनंत सिन्हा** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा सं. 10, 17 और 18 का अवलंब लिया है ।

4. सुने जाने के अधिकार से संबंधित मुद्दे पर दी गई तर्कणा के संबंध में **रतनलाल** बनाम **प्रहलाद जाट और अन्य**[3] वाले मामले का हवाला देना सुसंगत होगा । पूर्वोक्त निर्णय के सुसंगत पैरा सं. 8, 9 और 10 को नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "8. ब्लेक्स लॉ डिक्शनरी में "सुने जाने का अधिकार" पद का यह अर्थ दिया गया है कि उससे "किसी मंच पर कोई कार्रवाई लाने या सुने जाने का अधिकार" अभिप्रेत है । श्री पी. रामानाथ अय्यर की पुस्तक द लॉ लैक्सिकन के अनुसार "सुने जाने का अधिकार" पद से "किसी न्यायिक न्यायालय में उपस्थित होने का अधिकार" अभिप्रेत है । सुने जाने के अधिकार से पारंपरिक रूप से यह मत अभिप्रेत है कि ऐसे व्यक्ति को, जो व्यथित है या किसी प्रकार प्रतिकूल रूप से प्रभावित है, न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का अधिकार है, अर्थात् उसके पास न्याय की ईप्सा करते हुए न्यायालय में कोई आवेदन फाइल करने का अधिकार है । भारत में सांविधानिक विधि के विकास के साथ ही किसी व्यक्ति का किसी न्यायालय द्वारा सुने जाने के अधिकार संबंधी निर्वचन के रूढ़िवादी

---

[1] (2016) 6 एस. सी. सी. 699 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 1871.

[2] (2016) 6 एस. सी. सी. 105 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 1197.

[3] (2017) 9 एस. सी. सी. 340 = ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 5006.

नियम में आमूलचूल परिवर्तन हुआ है और अब सांविधानिक न्यायालय केवल अत्यधिक केवल तकनीकी आधारों पर किसी मुकदमेबाज के मामले के संबंध में कार्यवाही किए जाने या उसके दावे को नामंजूर किए जाने के संबंध में उदारवादी मत अपना रहे हैं । अब यह सुस्थापित है कि यदि कोई व्यक्ति किसी मामले के संबंध में पूर्णतया बाहरी व्यक्ति के रूप में पाया जाता है तो केवल उसके पास सुने जाने का अधिकार न होने के आधार पर उसे वाद से बाहर नहीं किया जा सकता ।

9. तथापि, दांडिक विचारण मुख्यतः दंड प्रक्रिया संहिता में अधिकथित प्रक्रिया का अनुपालन करते हुए संचालित किया जाता है । परिवादी के सुने जाने का अधिकार न्यायशास्त्र के लिए एक बाहरी अवधारणा है । कोई भी व्यक्ति किसी दांडिक विधि संबंधी कोई कार्यवाही प्रस्ताव ला सकता है सिवाय वहां के जहां किसी अपराध को अधिनियमित या सृजित करने वाला कानून इसके प्रतिकूल उपदर्शित करता है । यह साधारण सिद्धांत इस नीति पर आधारित है कि कोई अपराध, अर्थात् कोई कार्य या लोप जिसे तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा दंडनीय बनाया गया है, किसी ऐसे व्यक्ति, जिसे कोई हानि हुई है, के संबंध में किया गया मात्र कोई अपराध नहीं है अपितु वह समाज के विरुद्ध भी एक अपराध है । अतः, ऐसे अपराधों के संबंध में, जिन्हें समाज के विरुद्ध माना जाता है, राज्य का यह कर्तव्य बन जाता है कि वह अपराधी को दंडित करे । ए. आर. अन्तुले **बनाम** रामदास श्रीनिवास नायक (एस. सी. सी. पृष्ठ 508-9 पैरा 6 = ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 718) वाले मामले में इस न्यायालय की एक सांविधानिक न्यायपीठ ने इस पहलू पर निम्नानुसार विचार किया है –

> "6. ...... अन्य शब्दों में, यह सिद्धांत कि कोई भी व्यक्ति किसी दांडिक विधि का सहारा ले सकता है तब तक अक्षुण्ण बना रहता है जब तक कि किसी कानूनी उपबंध द्वारा उसके प्रतिकूल उपदर्शित न किया गया हो । लगभग सार्वभौमिक रूप से लागू होने वाला यह सिद्धांत इस नीति पर

आधारित है कि कोई अपराध, अर्थात् कोई कार्य या लोप जिसे तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा दंडनीय बनाया गया है, किसी ऐसे व्यक्ति, जिसे कोई हानि हुई है, के संबंध में किया गया मात्र कोई अपराध नहीं है अपितु वह समाज के विरुद्ध भी एक अपराध है । समाज अपने व्यवस्थित और शांतिपूर्वक विकास के लिए अपराधी को दंडित करने में दिलचस्पी रखता है । अतः, गंभीर अपराधों के लिए अभियोजन जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य के नाम पर चलाया जाता है जिससे किसी निजी शत्रुता या प्रतिशोध के तत्व को अपवर्जित किया जा सके । यदि शास्तिक कानूनों में अन्तर्निहित लोकनीति इस प्रकार की है तो किसी विधि द्वारा दंडनीय बनाए गए किसी कार्य या लोप को, उसके संबंध में कार्यवाही करने के लिए सक्षम प्राधिकारी की सूचना में किस व्यक्ति के द्वारा लाया जाता है यह बात तब तक सारवान् या सुसंगत नहीं है जब तक कि कानून इसके प्रतिकूल उपदर्शित न करे । समाज की बेहतरी के लिए अधिनियमित शास्तिक कानूनों के उद्देश्यों में से एक मुख्य उद्देश्य अपराधी को दंडित करने के प्रति समाज की दिलचस्पी भी है इसलिए किन्हीं कार्यवाहियों को प्रारंभ करने के अधिकार को, सिवाय विनिर्दिष्ट कानूनी अपवादों के, दांडिक न्यायशास्त्र के लिए अज्ञात सुने जाने के अधिकार के अनमनीय सूत्र द्वारा उसे कम, सीमित या निरुद्ध नहीं किया जा सकता है ।"

10. मनोहरलाल **बनाम** विनेश आनंद (ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 1820) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सुने जाने के अधिकार से संबंधित सिद्धांत दांडिक न्यायशास्त्र के लिए पूर्णतया अपरिचित है । किसी अपराध के किए जाने पर अपराधी को दंडित किया जाना एक सामाजिक आवश्यकता है । समाज यह बात बर्दाश्त नहीं कर सकता कि कोई अपराधी मात्र ऐसे किसी कारण से अपने दायित्व से बच जाए जिसके कारण सामाजिक प्रदूषण की ऐसी परिस्थितियां

उत्पन्न होंगी जो न तो वांछित हैं और न ही न्यायसंगत हैं और यह स्थान की अवधारणा को ध्यान में न रखते हुए है ।”

5. वास्तविक परिवादी मृतक पीड़िता का पिता है, जिसने विचारण न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन आरोप में परिवर्तन करने संबंधी आवेदन प्रस्तुत किया था । इस प्रक्रम पर **पी. कार्तिकालक्ष्मी** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 6 को उद्धृत करना उपयोगी होगा जो निम्नानुसार है :–

“6. संबंधित पक्षकारों के विद्‌वान् काउंसेलों की सुनवाई करने के पश्चात् हमें प्रत्यर्थी सं.1 के ज्येष्ठ काउंसेल के निवेदन में बल प्रतीत होता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 न्यायालय को निर्णय की उद्‌घोषणा से पूर्व किसी भी समय किसी आरोप में परिवर्तन करने या उसमें परिवृद्धि करने के लिए सशक्त बनाती है । अब यह सुस्थापित है कि न्यायालय में निहित यह शक्ति अनन्य रूप से न्यायालय में निहित है और किसी भी पक्षकार के पास अधिकार के रूप में कोई आवेदन फाइल करके किसी आरोप में परिवर्तन या उसमें इस प्रकार परिवृद्धि का निवेदन करने का कोई अधिकार नहीं है । यह अवश्य है कि यदि आरोप की विरचना में कोई लोप है या अपराध का विचारण करने वाले न्यायालय की जानकारी में ऐसा कोई लोप लाया जाता है तब भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 में उपबंधित किए गए अनुसार आरोप में परिवर्तन या उसमें परिवृद्धि करने की शक्ति सदैव न्यायालय में ही निहित होगी और ऐसी शक्ति न्यायालय को निर्णय की उद्‌घोषणा से पूर्व किसी भी समय उपलब्ध है । न्यायालय के लिए यह एक समर्थनकारी उपबंध है जिसके द्‌वारा वह कतिपय आकस्मिक परिस्थितियों में, जो उसकी सूचना में आती हैं या उसकी सूचना में लायी जाती हैं, अपनी इस शक्ति का प्रयोग कर सकता है । ऐसी किसी परिस्थिति में, यदि न्यायालय की जानकारी में यह लाया जाता है कि ऐसी आवश्यकता उत्पन्न हो गई है जिसमें आरोप में परिवर्तन करना या उसमें परिवृद्धि करना आवश्यक हो गया है तो

वह स्वविवेक से ऐसा कर सकेगा और इस प्रयोजन के लिए कोई भी आदेश पारित किया जाना आवश्यक नहीं है । ऐसे परिवर्तन या परिवृद्धि के पश्चात् जब अन्तिम निर्णय दिया जाता है तो पक्षकारों के पास यह अधिकार होगा कि वे विधि के अनुसार उन्हें उपलब्ध उपचारों का अवलंब ले सकें ।"

6. यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा कि पूर्वोक्त निर्णय का अवलंब याची द्वारा लिया गया है किन्तु निर्णय के पैरा 6 के परिशीलन से यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 न्यायालय के लिए एक समर्थनकारी उपबंध है जिसके द्वारा वह कतिपय आकस्मिक परिस्थितियों में, जो उसकी सूचना में आती हैं या उसकी सूचना में लायी जाती हैं, अपनी इस शक्ति का प्रयोग कर सकता है । वर्तमान मामले में, आरोप विरचित करने में हुई त्रुटि या लोप को वास्तविक परिवादी द्वारा विचारण न्यायालय की सूचना में लाया गया और तद्नुसार, न्यायालय द्वारा उस सामग्री जिसकी अनदेखी की गई थी, का परिशीलन करने के पश्चात् आरोप में परिवर्तन किया गया था । आक्षेपित आदेश के सुसंगत भाग को नीचे उद्धृत किया गया है :–

"अभियुक्त द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन फाइल किए गए उन्मोचन आवेदन की सुनवाई की तारीख को विद्वान् अभियोजक ने मृतक के शव पर शव-परीक्षा के समय पाए गए 21 क्षति चिह्नों, जिसके अन्तर्गत यौन हमले से संबंधित चिह्न भी हैं, की प्रकृति को विशिष्ट रूप से उपदर्शित नहीं किया । अन्वेषण अधिकारी द्वारा लाए गए आरोप पत्र को दंड संहिता की धारा 306 के अधीन दंडनीय अपराध हेतु विचारण करने के लिए प्रस्तुत किया गया है । सुनवाई के समय विद्वान् प्रतिरक्षा काउंसेल ने कड़े शब्दों में इस बात पर बल दिया था कि पीड़िता की गर्दन पर पाए गए क्षतियों के चिह्न अनिवार्यतः यह सुझाव देते हैं कि पीड़िता ने आत्महत्या की है । अभियोजन और साथ ही प्रतिरक्षा और विशिष्ट रूप से पुलिस रिपोर्ट द्वारा भ्रमित किए जाने पर इस न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचकर त्रुटि की कि तारीख 16

फरवरी, 2018 के आदेश द्वारा अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 306 के अधीन प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है ।

अभियोजन की घटना संबंधी व्याख्या के अनुसार यह पाया गया कि मृतक का शव, उस भवन में जिसमें उसका फ्लैट स्थित है, उसके सह-अधिभोगियों द्वारा सतत् प्रयास किए जाने पर जब उसे अभियुक्त द्वारा खोला गया तो फ्लैट के एक कक्ष के भीतर लटका पाया गया था जिसका तात्पर्य यह है कि जब मृतक का शव फ्लैट में पाया गया था उस समय कक्ष के भीतर अभियुक्त व्यक्ति के सिवाय कोई अन्य व्यक्ति मौजूद नहीं था..............................

इन परिस्थितियों पर विचार करते हुए जिनके अधीन मृतक का शव ऊपर उल्लिखत क्षतियों के चिह्नों, जिनके अन्तर्गत पीड़ित के शव पर काटे जाने के चिह्न और पीड़िता की योनी के योनिच्छद का फटना भी था, के साथ लटका हुआ पाया गया था, अभियुक्त के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302/76 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए प्रथमदृष्ट्या मामला बनाया गया है ।"

7. याची की ओर से प्रस्तुत की गई इस दलील में कोई गुणता नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 आरोप में किसी परिवर्तन को वर्जित करती है । इस प्रक्रम पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 के सुसंगत उपबंध को निर्दिष्ट करना सहायक होगा जो निम्नानुसार है :-

"362. न्यायालय का अपने निर्णय में परिवर्तन न करना – इस संहिता या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा जैसा उपबंधित है उसके सिवाय कोई न्यायालय जब उसने किसी मामले को निपटाने के लिए अपने निर्णय या अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर कर दिए हैं तब लिपिकीय या गणितीय भूल को ठीक करने के सिवाय उसमें कोई परिवर्तन नहीं करेगा या उसका पुनर्विलोकन नहीं करेगा ।"

8. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के कारण न्यायालय में निर्णय की उद्घोषणा से पूर्व किसी भी समय किसी आरोप में परिवर्तन या परिवृद्धि करने की शक्ति निहित है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216

के इस विनिर्दिष्ट उपबंध को ध्यान में रखते हुए न्यायालय द्वारा आरोप में परिवर्तन किए जाने के संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 के अधीन उपबंधित वर्जन लागू नहीं है । **साबुर हुसैन** (उपरोक्त) वाला मामला इस प्रकार वर्तमान मामले के प्रयोजन के लिए उपयुक्त नहीं है । यह स्पष्ट है कि विचारण न्यायालय ने एक सुसंगत आदेश द्वारा मामले संबंधी डायरी में विद्यमान सामग्री का परिशीलन करके आरोप में परिवर्तन किया था और उसका यह समाधान हो गया था कि अभियुक्त के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302/376 के अधीन दंडनीय अपराधों संबंधी प्रथमदृष्टया मामला बनता है ।

9. इस प्रकार आक्षेपित आदेश किसी भी प्रकार की अवैधता या अनियमितता से ग्रस्त नहीं है । अतः, उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना अपेक्षित नहीं है ।

10. इस प्रकार, 2018 की दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 2533 को तद्नुसार खारिज किया जाता है ।

11. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय द्वारा मामले के गुणागुण के संबंध में कोई भी राय अभिव्यक्त नहीं की गई है और विचारण न्यायालय इस निर्णय में ऊपर किए गए किसी भी संप्रेक्षण से प्रभावित हुए बिना विधि के अनुसार इस मामले का विनिश्चय करेगा ।

12. विधि के अनुसार मामले के त्वरित विचारण और निपटान के लिए इस आदेश की एक प्रति तुरन्त विचारण न्यायालय को संसूचित की जाए ।

13. अपेक्षित औपचारिकताओं का अनुपालन किए जाने पर इस आदेश की प्रमाणित प्रति की फोटोस्टेट प्रति को तुरन्त आवेदक को, यदि उसने उसके लिए आवेदन किया है, उपलब्ध कराया जाए ।

याचिका खारिज की गई ।

पुं.

पंचू मंडल उर्फ पंचू गोपाल मंडल

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य

(2014 की दांडिक अपील सं. 327)

तारीख 29 नवम्बर, 2019

न्यायमूर्ति शहीदुल्ला मुंशी और न्यायमूर्ति शुभाशीश दासगुप्ता

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 376(2)(च) (2013 के संशोधन के पूर्व) [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 164] – अप्राप्तवय कन्या के साथ बलात्संग – मजिस्ट्रेट के समक्ष आहत का कथन धारा 164 के अधीन अभिलिखित न किया जाना – आहत का उत्तर देने की स्थिति में न पाया जाना – अभियोजन पक्षकथन का प्रभावित न होना – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा आहत को धमकी दी गई है कि वह बलात्संग की घटना के संबंध में किसी को न बताए, आहत के भयोपरत होने के कारण वह अपना कथन धारा 164 के अधीन न दे सकी किन्तु न्यायालय में अभियोजन पक्षकथन का समर्थन किया है, अतः धारा 164 के अधीन आहत का कथन अभिलिखित न किए जाने से न्यायालय में दिया गया उसका सारभूत साक्ष्य खारिज नहीं किया जा सकता ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 154 – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में 16 घंटे का विलम्ब – अपराध का रात में कारित किया जाना – अप्रत्याशित घटना से आहत के माता-पिता का हताश पाया जाना – आहत के माता-पिता सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं और वे इस अप्रत्याशित घटना से हताश भी हो गए थे जिसके कारण वे घटना की रात्रि को ही प्रथम इतित्ला रिपोर्ट तत्काल दर्ज नहीं करा सके थे, इसलिए तर्कसम्मत स्पष्टीकरण के आधार पर अगले दिन दर्ज कराई गई रिपोर्ट को विलम्बित नहीं कहा जा सकता ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 376(2)(च) – बलात्संग – आहत द्वारा

प्रतिरोध किए जाने के साक्ष्य का अभाव – अपीलार्थी द्‌वारा आहत पर बल प्रयोग किया जाना – अपीलार्थी 29-30 वर्ष का नवयुवक है जिसने 7 वर्ष की नाजुक कन्या का एक हाथ से बलपूर्वक मुंह बन्द किया और दूसरे हाथ से उसको दबोचकर रखा, ऐसी स्थिति में आहत द्‌वारा प्रतिरोध न किया जाना और शोर न किया जाना स्वभाविक है जिससे अभियोजन पक्षकथन को असम्भावी नहीं ठहराया जा सकता ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 376(2)(च) – बलात्संग – आहत की आयु से संबंधित दस्तावेजी साक्ष्य का उपलब्ध न होना – स्वयं आहत द्‌वारा अपनी आयु बताना – आहत का उपचार करने वाले चिकित्सक की परीक्षा न कराना – अन्वेषण में आई कमी का अभियोजन पक्षकथन पर प्रभाव न पड़ना – आहत की आयु से संबंधित कोई भी दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है किन्तु आहत द्‌वारा उसकी आयु बताई गई है और आहत का उपचार करने वाले चिकित्सक की परीक्षा न कराना अन्वेषण अभिकरण की अयोग्यता कही जा सकती है किन्तु इससे अभियोजन पक्षकथन संदिग्ध नहीं हो सकता क्योंकि आहत का साक्ष्य अन्यथा भी विश्वसनीय प्रतीत होता है जिसकी पुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से भी होती है और इस प्रकार अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित है ।

विचारण के दौरान मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार उद्भूत हुए हैं कि शिकायतकर्ता ने, जो आहत महिला का पिता है, गरीबी रेखा से निचले वर्ग में आता है और भीख मांगकर अपना जीवन-निर्वाह करता है तथा घटना के समय तपेदिक रोग से ग्रसित था, घर लौटकर अपनी आहत पुत्री को, जिसकी आयु उस समय सात वर्ष थी, मूरी क्रय करने के लिए तारीख 13 अक्तूबर, 2008 को रात्रि लगभग 8.00 बजे निकट स्थित दुकान पर भेजा । आहत पुत्री युक्तियुक्त समयावधि के दौरान घर वापस नहीं आ सकी । पुत्री के वापस आने पर पिता/शिकायतकर्ता चिन्तित हो गया क्योंकि पुत्री के शरीर के निचले भाग से रक्त बह रहा था । पिता/शिकायतकर्ता द्‌वारा पूछताछ किए जाने पर आहत पुत्री ने बताया कि जब वह दुकान के रास्ते में थी, अभियुक्त-अपीलार्थी सड़क के किनारे बने हुए क्लब में कैरम खेल रहा था और अचानक उसके सामने आया तथा उसका हाथ पकड़कर एक पुस्तकालय के पीछे शौचालय के

निकट ले गया और उसके साथ बलात्संग किया । इस मामले का विचारण किए जाने के दौरान विचारण न्यायालय ने कुल मिलाकर 9 साक्षियों की परीक्षा की और अभियुक्त-अपीलार्थी को बलात्संग के अपराध का दोषी पाया । इस आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त-अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 164 के अधीन आहत कन्या का कथन अभिलिखित नहीं कर सके क्योंकि आहत कन्या उससे पूछे गए प्रश्नों के युक्तियुक्त उत्तर देने में असफल पाई गई । आहत कन्या की माता (अभि. सा. 3) की प्रतिपरीक्षा से यह प्रतीत होता है कि इस संबंध में पर्याप्त साक्ष्य है कि आहत कन्या के परिवार में अत्यन्त निर्धनता होने के कारण आहत कन्या को घर में ही रहना पड़ा, क्योंकि आहत की शिक्षा तो दूर रही, उसके माता-पिता उसे दो समय का खाना भी नहीं खिला सकते थे । अभियुक्त-अपीलार्थी आहत कन्या के माता-पिता का पड़ोसी है । वह आहत कन्या को पहले से जानता है । उसके द्वारा आहत कन्या को दी गई धमकी को इस आधार पर अनदेखा नहीं किया जा सकता कि उसके द्वारा दी गई यह धमकी सदैव कहीं न कहीं आहत के मन में बनी हुई थी अर्थात् उस समय भी जब आहत कन्या को उसका कथन अभिलिखित किए जाने के लिए विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया था । विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर न देने से पारिणामिक निष्कर्ष यह निकलता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा आहत कन्या को धमकी दी गई थी या अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि धमकी देने से आहत कन्या की मानसिक स्थिति ऐसी हो गई थी कि वह विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पूछे गए प्रश्नों का अर्थ ही न समझ सकी । इस प्रकार, सभी संभाव्यताओं के अधीन ऐसी परिस्थितियों में कथन न दिया जाना आहत कन्या को अत्यन्त आतंकित साबित करता है और आहत कन्या द्वारा दिए गए भय संबंधी कथन से भी यही साबित होता है । इसलिए, आहत कन्या द्वारा विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष कथन न दिए जाने के आधार पर इस मामले में प्रस्तुत उसके सारभूत साक्ष्य को खारिज नहीं किया जा सकता । आहत कन्या के कथन पर संदेह करने का कोई कारण

दिखाई नहीं देता है जैसा कि अपीलार्थी द्वारा बलपूर्वक प्रतिवाद किया गया है । (पैरा 16 और 17)

लिखित शिकायत पर अभिप्राप्ति से संबंधित किए गए पृष्ठांकन से यह उपदर्शित होता है कि तारीख 14 अक्तूबर, 2008 को अपराह्न लगभग 8.00 बजे से संबंधित घटना की शिकायत तारीख 14 अक्तूबर, 2008 को अपराह्न लगभग 5.35 बजे पुलिस थाने में प्राप्त हुई थी और उस शिकायत में यह उल्लेख किया गया था कि आहत कन्या को उसके मोहल्ले में निकट स्थित किरयाने की दुकान से मुरमुरे खरीदने के लिए भेजा गया था । अभि. सा. 8 ने यह दावा किया है कि अभियुक्त घटनास्थल से फरार हो गया था और इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि वह आहत कन्या, उसके माता-पिता और अभि. सा. 4 के साथ अपराह्न लगभग 4.00-4.30 बजे पुलिस थाने पहुंचा था । स्वीकृत रूप से यह घटना तारीख 13 अक्तूबर, 2008 को रात्रि लगभग 8.00 बजे घटित हुई है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया है कि चूंकि घटना देर रात की है, इसलिए शिकायतकर्ता अर्थात् आहत कन्या का पिता घटना वाले दिन ही पुलिस थाने शिकायत दर्ज कराने नहीं जा सका था । यह पूर्णतया स्वाभाविक है कि ऐसी अप्रत्याशित घटना से माता-पिता घबरा गए थे कि उनकी पुत्री अभियुक्त-अपीलार्थी की वासना का शिकार हो गई थी और यह भी सामान्य बात है कि विधि के अधीन उपबंधित समुचित दंड दिलाने हेतु तैयारी करने में समय लगता है । साक्ष्य में यह प्रकट हुआ है कि आहत कन्या का पिता तपेदिक का रोगी था और उसका सुसंगत समय के दौरान उपचार चल रहा था और वह दूसरे लोगों से भीख मांगकर अपना और अपने ऊपर आश्रित सदस्यों का भरणपोषण कर रहा था । इन परिस्थितियों पर संचयी रूप से विचार करने पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने में हुआ विलम्ब, जैसा कि विद्वान् न्यायमित्र द्वारा दृढ़तापूर्वक दलील दी गई है, महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इस संबंध में पर्याप्त स्पष्टीकरण दिया गया है जो कि न केवल प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उल्लिखित है अपितु आहत के माता-पिता के परिसाक्ष्य में भी स्पष्ट किया गया है जिसमें पारिणामिक घटनाओं का उल्लेख अभि. सा. 8 के

साक्ष्य के साथ किया गया है और वह समय भी प्रकट किया गया है जब शिकायतकर्ता अन्य व्यक्तियों के साथ आहत कन्या को पुलिस थाने लेकर गया था । एक मामले में किए गए विनिश्चय का अवलंब लिया जा सकता है जिसमें यह व्यक्त किया गया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुआ विलम्ब का प्रयोग अभियोजन पक्षकथन को त्यक्त करने और उसकी असलियत पर संदेह करने के लिए नहीं किया जा सकता । न्यायालय को केवल यह देखना चाहिए कि विलम्ब को स्पष्ट किया गया है या नहीं । यदि विलम्ब से संबंधित स्पष्टीकरण दिया गया है तब न्यायालय को इस पर विचार करना चाहिए कि यह स्पष्टीकरण समाधानप्रद है या नहीं । यदि अभियोजन पक्ष समाधानप्रद रूप से विलम्ब के संबंध में स्पष्टीकरण देने में असफल रहता है, तब ऐसे विलम्ब के कारण अभियोजन वृत्तान्त में हेर-फेर किए जाने और अतिश्योक्ति का प्रयोग किए जाने की गुंजाइश बन जाती है, दूसरी ओर विलम्ब के संबंध में दिए गए समाधानप्रद स्पष्टीकरण के आधार पर इस अभिवाक् को त्यक्त किया जा सकता है कि अभियुक्त को मिथ्या फंसाया गया है या अभियोजन पक्षकथन संदिग्ध है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए विलम्ब से, जिसमें समाधानप्रद स्पष्टीकरण दिया गया हो, अभियोजन पक्षकथन प्रभावित नहीं होता है । आहत कन्या के माता-पिता अर्थात् अभि. सा. 1 और अभि. सा. 3 को जब यह पता चला कि उनकी पुत्री के साथ बलात्संग किया गया है तब यह स्वाभाविक रहा होगा कि वे अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति को देखते हुए अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध पुलिस थाने में शिकायत दर्ज कराने का साहस नहीं जुटा पाए होंगे, इसीलिए उन्हें ऐसी दिशा में कार्य करने के लिए अपने मन को अनुकूल बनाना पड़ा होगा ताकि वे साहसपूर्ण पुलिस थाने में शिकायत दर्ज करा सकें और अपनी आहत कन्या के साथ कारित किए गए अपराध के लिए समुचित दंड दिला सकें क्योंकि वे जानते थे कि उनकी पुत्री को इसी समाज में इस सामाजिक कलंक के साथ रहना होगा । अतः घटना के तत्काल पश्चात् थोड़े समय का बितना पूर्णतया नैसर्गिक और सामान्य था जो केवल अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध कार्रवाई किए जाने के लिए था । इस प्रकार, इन

परिस्थितियों में हुआ ऐसा विलम्ब अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक नहीं है । (पैरा 20, 21, 22 और 25)

आहत कन्या ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह साक्ष्य दिया है कि जब उसे पुस्तकालय के पीछे ले जाया जा रहा था, तब अभियुक्त ने एक हाथ से उसका मुंह बन्द कर दिया और दूसरे हाथ से उसे दबोच कर रखा ताकि वह भाग न सके । इस प्रकार आहत कन्या ने उस परिस्थिति का चित्रण किया जो घटनास्थल पर घटित हुई थी जिससे यह स्पष्ट हुआ कि वह अभियुक्त-अपीलार्थी के इस अवांछनीय कृत्य के विरुद्ध शोर क्यों नहीं कर सकी । इस प्रकार आहत कन्या द्वारा उसके परिसाक्ष्य में किया गया वर्णन आबद्धकारी परिस्थितियों के अधीन विश्वसनीय प्रतीत होता है कि उसे बलपूर्वक पुस्तकालय के पीछे की ओर ले जाया गया था ताकि वह किसी प्रकार का कोई भी शोर न कर सके, और इस प्रकार वह अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा कारित अपराध का शिकार हुई । आहत कन्या द्वारा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के वर्णन से उसका चीख-पुकार न करना पूर्णतया संभावी हो जाता है जब उसे अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा पुस्तकालय के पीछे उसके साथ वासनापूर्ण कृत्य करने के लिए ले जाया गया था । इन परिस्थितियों में, इस बात की कोई गुंजाइश नहीं रहती है कि वह अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा किए गए कृत्य के प्रति शोर मचाती । इस प्रकार, आहत कन्या द्वारा किसी प्रकार का प्रतिरोध न करना या चीख-पुकार न करना ऐसा साक्ष्य नहीं है जिसके आधार पर अभियोजन पक्षकथन असंभावी ठहराया जाए । इस प्रकार न्यायालय की सुविचारित राय में, विद्वान् न्यायमित्र द्वारा दी गई दलील स्वीकार्य नहीं है । (पैरा 28)

आहत कन्या की आयु से संबंधित किसी ठोस दस्तावेज प्राप्त न किए जाने, आहत कन्या की आयु के संबंध में तत्काल अस्थि-परीक्षण न कराए जाने पर आहत कन्या की माता (अभि. सा. 3) और स्वयं आहत कन्या (अभि. सा. 5) के मौखिक परिसाक्ष्य से घटना के समय आहत कन्या की आयु उपदर्शित होती है जो कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के उपबंधों के अधीन अत्यन्त महत्वपूर्ण साक्ष्य है । ऐसे मौखिक परिसाक्ष्य पर विचार करने पर यह माना जा सकता है कि आहत कन्या की आयु 12 वर्ष से कम थी अर्थात् ऐसी आयु जो सम्मति देने के लिए

पर्याप्त न हो । आहत कन्या की चिकित्सा परीक्षा करने वाले चिकित्सक की परीक्षा न्यायालय में न कराए जाने से अभियोजन अभिकरण की अक्षमता प्रतीत होती है किन्तु अन्वेषण प्रक्रिया में आई कमी हमारी राय में दोषमुक्ति का आधार नहीं बन सकती । चिकित्सा परीक्षा रिपोर्ट को इस मामले में बिना किसी आक्षेप के प्रदर्श के रूप में चिन्हांकित किया गया है । विद्वान् न्यायमित्र द्वारा यह दलील नहीं दी गई है कि आहत की चिकित्सा परीक्षा किसी भी चिकित्सक द्वारा घटना के पश्चात् नहीं कराई गई है । विद्वान् न्यायमित्र द्वारा यह दलील दी गई है कि चिकित्सीय साक्ष्य अर्थात् प्रदर्श 6 यह न्यायोचित ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं है कि आहत कन्या के साथ बलात्संग किया गया है । जैसा कि इस मामले में पहले ही चर्चा की गई है अप्राप्तवय कन्या के साथ, जिसकी आयु 7 से 10 वर्ष थी, बलात्संग किया गया है, यदि अन्वेषण में कोई लोप या कमी अभियोजन अभिकरण की ओर से रह गई है और उसे महत्व दिया जाता है तब दांडिक विचारण का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाएगा । अतः अन्वेषण की असफलता और अभियोजन अभिकरण की अक्षमता इन परिस्थितियों में अधिक महत्वपूर्ण नहीं है अर्थात् ऐसी परिस्थितियां जिनमें आहत कन्या का परिसाक्ष्य अन्यथा विश्वसनीय, स्वीकार्य और विश्वासोत्पादक हो । इस संबंध में साक्ष्य बिल्कुल स्पष्ट हैं कि शिकायतकर्ता पिता, उसकी पत्नी और आहत कन्या ने क्लब के सदस्यों के साथ सौहार्द संबंध बनाए हुए थे जो इस मामले में साक्षी हैं और अभियुक्त-अपीलार्थी का संबंध विरोधी क्लब से है । अभिलेख पर यह भी साक्ष्य है कि शिकायतकर्ता परिवार गरीबी रेखा से नीचे है और आहत कन्या का पिता भीख मांगकर अपने परिवार का भरणपोषण करता है । न तो आहत के माता-पिता, और न ही स्वयं आहत प्रत्यक्षतः क्लब के सदस्यों से जुड़े हुए नहीं थे न ही उन्हें उस क्लब से कोई संरक्षण प्राप्त था । इस संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है कि परीक्षा किए गए साक्षियों ने शिकायकर्ता परिवार के सदस्यों को उनके भरणपोषण के लिए किसी प्रकार की कोई वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई है जिसके बिना यह विश्वास करना कठिन होगा कि जो कुछ उन्होंने इस मामले में अभिसाक्ष्य दिया है वह विचारण के दौरान इस मामले में परीक्षा किए गए साक्षियों के प्रभाव का परिणाम है । सौहार्द संबंध बनाकर रखना या

क्लब के सदस्यों से मुलाकात करते रहने से यह साबित नहीं होता है कि अभि. सा. 1, अभि. सा. 3 और अभि. सा. 5 का प्रयोग क्लब के सदस्यों अर्थात् अभि. सा. 2 और अभि. सा. 4 से अभि. सा. 8, गलत रूप में किया गया है ताकि वे क्लब संबंधी शत्रुता का बदला ले सकें । ऐसे साक्षियों की विश्वसनीयता पर इस आधार पर संदेह नहीं किया जा सकता है कि क्लब के वे सदस्य, जिन्होंने इस मामले में साक्ष्य दिया है, शिकायतकर्ता पिता की सहायता के लिए तब आगे आए हैं जब उन्हें अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा आहत के साथ बलात्संग किए जाने की जानकारी मिली है । विद्वान् न्यायमित्र द्वारा दी गई दलील महत्वपूर्ण नहीं है । न्यायालय का ध्यान आहत कन्या की चिकित्सा परीक्षा रिपोर्ट जिसे प्रदर्श 6 के रूप में चिन्हांकित किया गया है जिसे अन्वेषण के दौरान अन्वेषण अधिकारी द्वारा प्राप्त किया गया है । इस रिपोर्ट में, आहत कन्या के योनिच्छद में एक छोटा कटाव पाया गया है जिसके समर्थन में आहत ने तारीख 15 अक्तूबर, 2008 को दोपहर 12.00 बजे अपनी चिकित्सा परीक्षा के समय चिकित्सक के समक्ष यह साक्ष्य दिया था कि उसे अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा ले जाया गया था इसके पश्चात् उसके साथ बलात्संग किया गया था । अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 9) की प्रतिपरीक्षा से यह दर्शित होता है कि आहत कन्या के योनिच्छद में कटाव पाए जाने के अतिरिक्त अन्य कोई क्षति, जैसे सूजन, रगड़ आदि नहीं पाई गई है । आहत कन्या की चिकित्सा परीक्षा के दौरान सभी मापदंड सामान्य पाए गए हैं । विचार के लिए सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि आहत ने अपनी चिकित्सा परीक्षा के समय चिकित्सक के समक्ष ऐसा कथन क्यों दिया जबकि आहत की या आहत के माता-पिता की अभियुक्त-अपीलार्थी के साथ पहले से कोई दुश्मनी नहीं थी । आहत कन्या (अभि. सा. 5) के इस परिसाक्ष्य की संपुष्टि उसकी चिकित्सा रिपोर्ट अर्थात प्रदर्श 6 से होती है कि अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा उसके साथ बलात्संग किया गया है । अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा आहत कन्या के साथ बलात्संग किए जाने का अभिकथन सभी युक्तियुक्त संदेह के परे वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो गया है । न्यायालय ने आहत की प्रतिपरीक्षा को अनदेखा नहीं करना चाहिए जिससे यह पता चलता है कि वह अपने साथ के बच्चों के साथ खेला करती थी और जब खेल के दौरान वह उछल-कूद

करती थी जो न्यायालय की राय में एक सुसंगत साक्ष्य है किन्तु आहत कन्या की चिकित्सा रिपोर्ट के साथ मेल नहीं खाता है । जब मामला दर्ज किए जाने के अगले दिन आहत कन्या की चिकित्सा परीक्षा चिकित्सक द्वारा कराई गई, तब उसकी योनिच्छद में कटाव का पाया जाना अभियुक्त-अपीलार्थी को आवश्यक रूप से अपराध से संबद्ध करता है, भले ही आहत की योनि में आया कटाव छोटा ही क्यों न हो । आहत कन्या के साथ बलात्संग किए जाने की संभाव्यता उसकी प्रतिपरीक्षा से प्रभावित नहीं होती है और इस तथ्य से भी यह संभाव्यता प्रभावित नहीं होती है कि आहत कन्या अपने साथ के बच्चों के साथ खेल-कूद किया करती थी और इस कारण उसकी योनिच्छद में कटाव आया था । यद्यपि आहत कन्या की चिकित्सा परीक्षा करने वाले चिकित्सक द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट में कोई भी निश्चित राय व्यक्त नहीं की गई है किन्तु आहत कन्या (अभि. सा. 5) के परिसाक्ष्य का संचयी रूप से परिशीलन करने पर एकमात्र निष्कर्ष यह निकलता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा आहत के साथ बलात्संग किया गया है, जिसके संबंध में चिकित्सक द्वारा चिकित्सा परीक्षा करने के दौरान टिप्पणी की गई है कि आहत कन्या के योनिच्छद में छोटा सा कटाव है । आहत कन्या की योनि में इसके अतिरिक्त अन्य कोई समवर्ती क्षति नहीं पाई गई है, यद्यपि यह तथ्य सुसंगत है किन्तु यह ऐसे मामले में सदैव निश्चायक नहीं माना जा सकता जहां 12 वर्ष से कम आयु की कन्या के साथ बलात्संग किया गया हो और जिसकी स्वीकृत रूप से सुसंगत समय के दौरान अभियुक्त-अपीलार्थी के साथ कोई शत्रुता न हो । (पैरा 31, 34, 36, 37, 39 और 40)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	(2010) 9 एस. सी. सी. 567 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3718 : **सी. मुनियप्पन और अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	32
[2006]	(2006) 3 एस. सी. सी. 771 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1267 : **दिनेश** उर्फ **बुद्धा** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	24

[2003] (2003) 8 एस. सी. सी. 590 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 978 :
तुलसीदास कनोलकर बनाम **गोवा राज्य** । 22

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 327.

2009 के सेशन मामला सं. 53(1) से उद्भूत 2009 के सेशन विचारण मामला सं. 4(2) में विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, द्वितीय त्वरित न्यायालय, अलीपुर, दक्षिण 24-परगना द्वारा तारीख 20 मार्च, 2014 को की गई दोषसिद्धि के निर्णय और तारीख 21 मार्च, 2014 को पारित किए गए दंडादेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री पार्थ सारथी भट्टाचार्य (न्यायमित्र)

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री एन. पी. अग्रवाल और अरिन्दम सेन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति शुभाशीश दासगुप्ता ने दिया ।

न्या. दासगुप्ता – यह अपील 2009 के सेशन मामला सं. 53(1) से उद्भूत 2009 के सेशन विचारण मामला सं. 4(2) में विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, द्वितीय त्वरित न्यायालय, अलीपुर, दक्षिण 24-परगना द्वारा तारीख 20 मार्च, 2014 को की गई दोषसिद्धि के उस निर्णय और तारीख 21 मार्च, 2014 को पारित किए गए उस दंडादेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में दंड संहिता कहा गया है) की धारा 376(2)(च) के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और 8 वर्ष के कठोर कारावास तथा 5,000/- रुपए के जुर्माने के संदाय से, जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर दो मास के अतिरिक्त साधारण कारावास से दंडादिष्ट किया गया है ।

2. विचारण के दौरान मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार उद्भूत हुए हैं कि शिकायतकर्ता ने, जो आहत महिला का पिता है, गरीबी रेखा से निचले वर्ग में आता है और भीख मांगकर अपना जीवन-निर्वाह करता है तथा घटना के समय तपेदिक रोग से ग्रसित था, घर लौटकर अपनी आहत पुत्री को, जिसकी आयु उस समय सात वर्ष थी, मूरी क्रय करने के

लिए तारीख 13 अक्तूबर, 2008 को रात्रि लगभग 8.00 बजे निकट स्थित दुकान पर भेजा ।

3. आहत पुत्री युक्तियुक्त समयावधि के दौरान घर वापस नहीं आ सकी । पुत्री के वापस आने पर पिता/शिकायतकर्ता चिन्तित हो गया क्योंकि पुत्री के शरीर के निचले भाग से रक्त बह रहा था । पिता/शिकायतकर्ता द्वारा पूछताछ किए जाने पर आहत पुत्री ने बताया कि जब वह दुकान के रास्ते में थी, अभियुक्त-अपीलार्थी सड़क के किनारे बने हुए क्लब में कैरम खेल रहा था और अचानक उसके सामने आया तथा उसका हाथ पकड़कर एक पुस्तकालय के पीछे शौचालय के निकट ले गया और उसके साथ बलात्संग किया ।

4. अक्षय मंडल (अभि. सा. 8) और सुदेव सरकार (अभि. सा. 4) ने अभियुक्त-अपीलार्थी को भागने का प्रयास करते हुए देखा और जब अभियुक्त-अपीलार्थी को पकड़ लिया तब उसने अपना दोष संस्वीकृत किया और इसके पश्चात्, वह भाग गया ।

5. इस शिकायत के आधार पर पुलिस ने अन्वेषण आरम्भ किया, आहत को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 164 के अधीन उसका कथन अभिलिखित कराए जाने के लिए न्यायालय में प्रस्तुत किया किन्तु उसका कथन इस आधार पर अभिलिखित नहीं किया जा सका कि वह अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा दी गई धमकी से अत्यन्त भयभीत थी जिसने आहत से किसी भी व्यक्ति को इस घटना के बारे में बताने से मना किया था ।

6. तथापि, अभियुक्त-अपीलार्थी की चिकित्सा परीक्षा कराए जाने के अतिरिक्त आहत की चिकित्सा परीक्षा भी कराई गई । अन्वेषण के दौरान आहत के पहने हुए वस्त्र परीक्षण के लिए न्यायालयिक प्रयोगशाला भेजे गए । अन्वेषण पूरा होने पर पुलिस ने आरोप पत्र प्रस्तुत किया ।

7. विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 376(2)(च) के अधीन अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप विरचित करने के पश्चात् आहत

महिला के माता-पिता (अभि. सा. 1 और अभि. सा. 3) सहित कुल मिलाकर 9 साक्षियों की परीक्षा कराई, आहत की परीक्षा अभि. सा. 5 के रूप में कराई गई है और दो अन्य साक्षियों की परीक्षा अभि. सा. 4 और अभि. सा. 8 के रूप में कराई गई है जिनके बारे में यह बताया गया है कि उन्होंने घटना के तत्काल पश्चात् जब अभियुक्त-अपीलार्थी ने घटनास्थल से भागने का प्रयास किया था, उसे दबोच लिया था और इन्हीं साक्षियों के समक्ष अभियुक्त-अपीलार्थी ने अभिकथित रूप से अपना दोष संस्वीकृत करते हुए न्यायेतर संस्वीकृति कथन दिया था और इस मामले में अन्वेषण अधिकारी की परीक्षा अभि. सा. 9 के रूप में कराई गई है ।

8. न्यायालय ने विचारण के दौरान अभिलेख पर साक्ष्य उपलब्ध होने के पश्चात् अभियुक्त-अपीलार्थी को आहत (अभि. सा. 5), उसके माता-पिता (अभि. सा. 1 और अभि. सा. 3), दो स्वतंत्र साक्षी (अभि. सा. 4 और अभि. सा. 8) तथा आहत की चिकित्सा परीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श 6) जिसमें आहत की योनिच्छद में कटाव कारित किए जाने का उल्लेख है, का अवलंब लेते हुए दंड संहिता की धारा 376(2)(च) के अधीन अपराध का दोषी अभिनिर्धारित किया ।

9. विद्वान् अधिवक्ता श्री पार्थ सारथी भट्टाचार्य अपीलार्थी की ओर से न्यायमित्र के रूप में न्यायालय में पेश हुए हैं जिन्होंने अभियोजन वृत्तान्त पर संदेह करते हुए दोषसिद्धि के आदेश को चुनौती देने की ईप्सा की है ताकि अभियुक्त-अपीलार्थी को दोषमुक्ति का आदेश कायम रखने के लिए संदेह का लाभ दिया जा सके और उन्होंने कई आधार पर दलील दी है जो निम्न प्रकार है :-

> (1) यद्यपि आहत ने अपराधी का नाम अभि. सा. 4 और अभि. सा. 8 को बता सकती थी, जैसा कि आहत के पिता (अभि. सा. 1) के परिसाक्ष्य से पता चलता है किन्तु आहत विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन दिए गए अपने कथन में उसका नाम नहीं बता सकी क्योंकि वह अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा घटना के तत्काल पश्चात् दी गई धमकी

से भयभीत थी और अभियोजन के इस पक्षकथन से अभियोजन वृत्तान्त अत्यन्त असंभावी हो जाता है ।

(2) यद्यपि यह घटना तारीख 13 अक्तूबर, 2008 को रात्रि लगभग 8.00 बजे घटित हुई है, इस मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 14 अक्तूबर, 2008 को अपराह्न 3.35 बजे दर्ज कराई गई है जिससे पूरी तरह यह उपदर्शित होता है कि अभियोजन पक्षकथन इतने लम्बे विलम्ब के कारण बनावटी प्रतीत होता है, जिसका लाभ अपीलार्थी को दिया जाना चाहिए । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में विलम्ब इस कारण हुआ है कि रात्रि का समय था और उस दौरान घटना वाले दिन ही शिकायत दर्ज नहीं की जा सकती थी, इस तथ्य के संबंध में सम्यक् रूप से स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है और इस प्रकार ऐसा विलम्ब जिसके संबंध में कोई भी स्पष्टीकरण न दिया गया हो, सोच-विचार के उपरान्त किया गया कार्य माना जाएगा ।

(3) आहत ने बलात्संग के समय कोई भी प्रतिरोध नहीं किया और न ही शोर मचाया जिससे बलात्संग किए जाने का समर्थन, जैसा कि विचारण के दौरान पाया गया है, नहीं होता है ।

(4) आहत की चिकित्सा परीक्षा संबंधी रिपोर्ट को अधिक महत्व इसलिए नहीं दिया जा सकता कि उस चिकित्सक की परीक्षा नहीं कराई गई है जिसने आहत महिला की चिकित्सा परीक्षा की थी ।

(5) चूंकि यह एक बनावटी मामला है जिसका उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों को लाभ पहुंचाना है जो क्लब के अनुयायी हैं और इस मामले में उनको साक्षी भी बनाया गया है जिनका यह क्लब अभियुक्त-अपीलार्थी के क्लब के सामने है और इससे क्लब की प्रतिद्वन्द्विता दर्शित होती है जिस पर विचारण न्यायालय को ध्यान देना चाहिए था और इस तथ्य पर विचार न करने के कारण अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

(6) आहत लड़की की योनि में आई क्षति से संबंधित कोई भी

संपोषक क्षति नहीं पाई गई है जिससे उसके साथ बलात्संग किए जाने का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता जबकि उस लड़की की आयु स्वीकृत रूप से मैदान में खेलने-कूदने वाली है ।

(7) साक्षियों के परिसाक्ष्य में विशेषकर अभि. सा. 4, अभि. सा. 5 और अभि. सा. 8 के परिसाक्ष्य में आए स्पष्ट विरोधाभास की तुलना अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 9) के साक्ष्य के साथ करने पर आहत कन्या के साथ हुए बलात्संग का अपराध संदिग्ध हो जाता है जिससे अभियुक्त-अपीलार्थी को दोषमुक्त किए जाने के लिए संदेह का लाभ दिया जा सकता है ।

10. प्रत्यर्थी/राज्य की ओर विद्वान् अधिवक्ता ने दोषसिद्धि और दंडादेश का समर्थन किया है और यह दलील दी है कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से, विद्वान् न्यायमित्र द्वारा इंगित विरोधाभास अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं क्योंकि परिस्थितियों की सम्पूर्णता पर विचार करते हुए उनका संबंध अभियोजन पक्षकथन की बुनियाद से नहीं है ।

11. इस प्रकार, प्रत्यर्थी/राज्य के अनुसार तुच्छ मामलों में आए छोटे-मोटे विरोधाभास, जैसा कि विद्वान् न्यायमित्र द्वारा इंगित किया गया है, अभियोजन पक्षकथन को प्रभावित नहीं करते हैं और उनके आधार पर सम्पूर्ण साक्ष्य को अभिखंडित नहीं किया जा सकता ।

12. विद्वान् न्यायमित्र द्वारा इस मामले में दी गई चुनौती का मुख्य केन्द्र विरोधाभासों से लाभ लेना है, हमारी यह सुविचारित राय है कि हमें इन बिन्दुओं पर एक-एक करके विचार करना चाहिए, जैसा कि दलील देने के दौरान विद्वान् न्यायमित्र द्वारा बल दिया गया है ।

13. स्वीकृततः, आहत कन्या संहिता की धारा 164 के अधीन इस आधार पर कोई भी कथन नहीं दे सकी कि उसे अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा धमकी दी गई थी । क्या इस धमकी से आहत कन्या विद्वान् मजिस्ट्रेट को इसके बावजूद अपना कथन नहीं दे सकी कि उसे विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष स्वयं प्रस्तुत किया गया था, हमें इस बिन्दु पर चर्चा करनी होगी ।

14. अपीलार्थी के विद्वान् न्यायमित्र ने बलपूर्वक यह दलील दी है कि इस अभिवाक् के बावजूद कि कन्या धमकी से डर गई थी उसने मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत होकर कथन नहीं दिया, विश्वसनीय वृत्तान्त प्रतीत नहीं होता है क्योंकि वह इसके बारे में अन्य व्यक्तियों को प्रकटीकरण कथन दे सकती थी किन्तु विद्वान् मजिस्ट्रेट को नहीं दिया । अपीलार्थी के अनुसार, कन्या का यह कृत्य अत्यंत संदिग्ध है ।

15. अभियोजन पक्षकथन के अनुसार, आहत कन्या की आयु घटना के समय सात वर्ष बताई गई है, जो उस समय बिल्कुल भी शिक्षित नहीं थी । आहत कन्या ने अपने साक्ष्य में यह स्वीकार किया है कि वह सुसंगत तारीख को विद्वान् मजिस्ट्रेट के चैम्बर में गई थी किन्तु उसने भय के कारण विद्वान् मजिस्ट्रेट को कथन नहीं दिया क्योंकि उसे पहले ही अभियुक्त-अपीलार्थी धमकी दे चुका था । आहत कन्या के साक्ष्य का यह भाग विद्वान् मजिस्ट्रेट के तारीख 10 नवम्बर, 2008 के आदेश से, जब आहत कन्या विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष संहिता की धारा 164 के अधीन कथन अभिलिखित किए जाने के लिए प्रस्तुत की गई थी, सीधा संबंधित है । तारीख 10 नवम्बर, 2008 के आदेश द्वारा विद्वान् मजिस्ट्रेट ने यह विचार व्यक्त किया है कि आहत कन्या का कथन इसलिए अभिलिखित नहीं किया जा सका था कि वह अपने कथन की प्रकृति और उसके परिणाम को समझने में अक्षम थी और वह मजिस्ट्रेट द्वारा पूछे गए प्रश्नों का ठीक उत्तर भी नहीं दे पा रही थी ।

16. इस प्रकार, विद्वान् मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 164 के अधीन आहत कन्या का कथन अभिलिखित नहीं कर सके क्योंकि आहत कन्या उससे पूछे गए प्रश्नों के युक्तियुक्त उत्तर देने में असफल पाई गई । आहत कन्या की माता (अभि. सा. 3) की प्रतिपरीक्षा से यह प्रतीत होता है कि इस संबंध में पर्याप्त साक्ष्य है कि आहत कन्या के परिवार में अत्यन्त निर्धनता होने के कारण आहत कन्या को घर में ही रहना पड़ा, क्योंकि आहत की शिक्षा तो दूर रही, उसके माता-पिता उसे दो समय का खाना भी नहीं खिला सकते थे ।

17. अभियुक्त-अपीलार्थी आहत कन्या के माता-पिता का पड़ोसी है ।

वह आहत कन्या को पहले से जानता है । उसके द्वारा आहत कन्या को दी गई धमकी को इस आधार पर अनदेखा नहीं किया जा सकता कि उसके द्वारा दी गई यह धमकी सदैव कहीं न कहीं आहत के मन में बनी हुई थी अर्थात् उस समय भी जब आहत कन्या को उसका कथन अभिलिखित किए जाने के लिए विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया था । विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर न देने से पारिणामिक निष्कर्ष यह निकलता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा आहत कन्या को धमकी दी गई थी या अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि धमकी देने से आहत कन्या की मानसिक स्थिति ऐसी हो गई थी कि वह विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पूछे गए प्रश्नों का अर्थ ही न समझ सकी । इस प्रकार, सभी संभाव्यताओं के अधीन ऐसी परिस्थितियों में कथन न दिया जाना आहत कन्या को अत्यन्त आतंकित साबित करता है और आहत कन्या द्वारा दिए गए भय संबंधी कथन से भी यही साबित होता है । इसलिए, आहत कन्या द्वारा विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष कथन न दिए जाने के आधार पर इस मामले में प्रस्तुत उसके सारभूत साक्ष्य को खारिज नहीं किया जा सकता । आहत कन्या के कथन पर संदेह करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है जैसा कि अपीलार्थी द्वारा बलपूर्वक प्रतिवाद किया गया है ।

18. विधि की सुस्थापित विधि यह है कि यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने में हुआ विलम्ब समाधानप्रद रूप से स्पष्ट नहीं किया गया है, तब अभियोजन वृत्तान्त में हेर-फेर करने और जोड़-तोड़ करने की गुंजाइश बनी रहती है । इस प्रकार, प्रश्न यह उठता है कि क्या मामला दर्ज कराने में हुआ विलम्ब समुचित और समाधानप्रद रूप से स्पष्ट किया गया है या नहीं ताकि किसी भी गड़बड़ी की संभावना को निष्फल किया जा सके ।

19. विद्वान् न्यायमित्र के अनुसार, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए विलम्ब को समाधानप्रद रूप से स्पष्ट नहीं किया गया है, इसलिए इसका लाभ अभियुक्त-अपीलार्थी को दिया जाएगा ।

20. लिखित शिकायत पर अभिप्राप्ति से संबंधित किए गए

पृष्ठांकन से यह उपदर्शित होता है कि तारीख 14 अक्तूबर, 2008 को अपराह्न लगभग 8.00 बजे से संबंधित घटना की शिकायत तारीख 14 अक्तूबर, 2008 को अपराह्न लगभग 5.35 बजे पुलिस थाने में प्राप्त हुई थी और उस शिकायत में यह उल्लेख किया गया था कि आहत कन्या को उसके मोहल्ले में निकट स्थित किरयाने की दुकान से मुरमुरे खरीदने के लिए भेजा गया था । अभि. सा. 8 ने यह दावा किया है कि अभियुक्त घटनास्थल से फरार हो गया था और इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि वह आहत कन्या, उसके माता-पिता और अभि. सा. 4 के साथ अपराह्न लगभग 4.00-4.30 बजे पुलिस थाने पहुंचा था । स्वीकृत रूप से यह घटना तारीख 13 अक्तूबर, 2008 को रात्रि लगभग 8.00 बजे घटित हुई है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया है कि चूंकि घटना देर रात की है, इसलिए शिकायतकर्ता अर्थात् आहत कन्या का पिता घटना वाले दिन ही पुलिस थाने में शिकायत दर्ज कराने नहीं जा सका था । यह पूर्णतया स्वाभाविक है कि ऐसी अप्रत्याशित घटना से माता-पिता घबरा गए थे कि उनकी पुत्री अभियुक्त-अपीलार्थी की वासना का शिकार हो गई थी और यह भी सामान्य बात है कि विधि के अधीन उपबंधित समुचित दंड दिलाने हेतु तैयारी करने में समय लगता है ।

21. साक्ष्य में यह प्रकट हुआ है कि आहत कन्या का पिता तपेदिक का रोगी था और उसका सुसंगत समय के दौरान उपचार चल रहा था और वह दूसरे लोगों से भीख मांगकर अपना और अपने ऊपर आश्रित सदस्यों का भरणपोषण कर रहा था । इन परिस्थितियों पर संचयी रूप से विचार करने पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने में हुआ विलम्ब, जैसा कि विद्वान् न्यायमित्र द्वारा दृढ़तापूर्वक दलील दी गई है, महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इस संबंध में पर्याप्त स्पष्टीकरण दिया गया है जो कि न केवल प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उल्लिखित है अपितु आहत के माता-पिता के परिसाक्ष्य में भी स्पष्ट किया गया है जिसमें पारिणामिक घटनाओं का उल्लेख अभि. सा. 8 के साक्ष्य के साथ किया गया है और वह समय भी प्रकट किया गया है जब शिकायतकर्ता अन्य व्यक्तियों के

साथ आहत कन्या को पुलिस थाने लेकर गया था ।

22. **तुलसीदास कनोलकर** बनाम **गोवा राज्य**[1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय का अवलंब लिया जा सकता है जिसमें यह व्यक्त किया गया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुआ विलम्ब का प्रयोग अभियोजन पक्षकथन को त्यक्त करने और उसकी असलियत पर संदेह करने के लिए नहीं किया जा सकता । न्यायालय को केवल यह देखना चाहिए कि विलम्ब को स्पष्ट किया गया है या नहीं । यदि विलम्ब से संबंधित स्पष्टीकरण दिया गया है तब न्यायालय को इस पर विचार करना चाहिए कि यह स्पष्टीकरण समाधानप्रद है या नहीं । यदि अभियोजन पक्ष समाधानप्रद रूप से विलम्ब के संबंध में स्पष्टीकरण देने में असफल रहता है, तब ऐसे विलम्ब के कारण अभियोजन वृत्तान्त में हेर-फेर किए जाने और अतिश्योक्ति का प्रयोग किए जाने की गुंजाइश बन जाती है, दूसरी ओर विलम्ब के संबंध में दिए गए समाधानप्रद स्पष्टीकरण के आधार पर इस अभिवाक् को त्यक्त किया जा सकता है कि अभियुक्त को मिथ्या फंसाया गया है या अभियोजन पक्षकथन संदिग्ध है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए विलम्ब से, जिसमें समाधानप्रद स्पष्टीकरण दिया गया हो, अभियोजन पक्षकथन प्रभावित नहीं होता है ।

23. आहत कन्या के परिवार की पृष्ठभूमि और समाज के उस वर्ग को ध्यान में रखना होगा जिससे उसका संबंध है । चोट का घाव भर जाता है किन्तु मानसिक पीड़ा रूपी घाव कभी नहीं भरता जिससे सात वर्ष की कन्या आहत हुई है और इसी पीड़ा से उसे अपना शेष जीवन बिताना है ।

24. **दिनेश** उर्फ **बुद्धा** बनाम **राजस्थान राज्य**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के पैरा 6 को निर्दिष्ट करना लाभकारी होगा जो निम्न प्रकार है :–

---

[1] (2003) 8 एस. सी. सी. 590 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 978.

[2] (2006) 3 एस. सी. सी. 771 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1267.

"(6) लैंगिक हिंसा अमानवीय कृत्य के अतिरिक्त किसी स्त्री की निजता और उसकी गरिमा के अधिकार का विधिविरुद्ध अतिक्रमण है । यह उसकी मान-मर्यादा पर एक गंभीर आघात है और इसे नारी का आत्मसम्मान प्रभावित होता है, इससे आहत का अपमान होता है और जहां आहत कोई मासूम बच्चा या अप्राप्तवय बालक या बालिका को तब स्थिति अत्यन्त पीड़ादायक हो जाती है । बलात्संगी न केवल महिला को शारीरिक क्षति कारित करता है अपितु उसकी गरिमा, सम्मान और प्रतिष्ठा पर ऐसा दाग लगाता है जो कभी नहीं मिट सकता और इतना ही नहीं उसका सतीत्व भी प्रभावित होता है । बलात्संग किसी नारी के शरीर के साथ किया गया अपराध ही नहीं अपितु यह पूरे समाज के प्रति अपराध है । जैसा कि बुद्धिसत्वा गौतम **बनाम** सुब्रहचक्रबोर्ती [ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 922] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि महिला की सम्पूर्ण मनोभावना पर इस अपराध से बहुत गहरा असर पड़ता है । यह मानव के मूल अधिकारों के विरुद्ध अपराध है और इस अपराध से आहत के अत्यन्त महत्वपूर्ण अधिकार अर्थात् संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन अन्तर्विष्ट प्राण के अधिकार का भी अतिक्रमण होता है । अतः न्यायालयों से यह प्रत्याशा की जाती है कि वे महिलाओं के साथ किए गए लैंगिक अपराधों से संबंधित मामलों में अत्यन्त सावधानी से विचार करें । ऐसे मामलों में (न्यायालयों की ओर से) कड़ी सतर्कता बरती जानी चाहिए । हमारी राय में, सामाजिक रूप से क्रियाशील न्यायाधीश, दंड संबंधी उपबंधों के लम्बे-लम्बे खण्डों में अन्तर्विष्ट जटिल अपवादों और परन्तुकों की अपेक्षा एक बेहतर कानूनी कवच है ।"

25. आहत कन्या के माता-पिता अर्थात् अभि. सा. 1 और अभि. सा. 3 को जब यह पता चला कि उनकी पुत्री के साथ बलात्संग किया गया है तब यह स्वाभाविक रहा होगा कि वे अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति को देखते हुए अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध पुलिस थाने में शिकायत दर्ज कराने का साहस नहीं जुटा पाए होंगे, इसीलिए उन्हें ऐसी दिशा में कार्य करने के लिए अपने मन को अनुकूल बनाना पड़ा

होगा ताकि वे साहसपूर्ण पुलिस थाने में शिकायत दर्ज करा सकें और अपनी आहत कन्या के साथ कारित किए गए अपराध के लिए समुचित दंड दिला सकें क्योंकि वे जानते थे कि उनकी पुत्री को इसी समाज में इस सामाजिक कलंक के साथ रहना होगा । अतः घटना के तत्काल पश्चात् थोड़े समय का बितना पूर्णतया नैसर्गिक और सामान्य था जो केवल अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध कार्रवाई किए जाने के लिए था । इस प्रकार, इन परिस्थितियों में हुआ ऐसा विलम्ब अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक नहीं है ।

26. विद्वान् न्यायमित्र के अनुसार, घटना के समय आहत कन्या द्वारा शोर नहीं किया गया था, उसके द्वारा कोई भी प्रतिरोध नहीं किया गया था जिससे अभियोजन वृत्तान्त अत्यन्त असम्भावी हो जाता है ।

27. आहत कन्या की आयु घटना के समय सात वर्ष थी जिसकी तुलना अभियुक्त-अपीलार्थी की आयु अर्थात् 29-30 वर्ष से करने पर, जैसा कि अभि. सा. 8 द्वारा उल्लेख किया गया है, इस मामले में विनिश्चय देने के लिए गहराई से विचार करना होगा । इस आधार पर आहत कन्या का परिसाक्ष्य विचार के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है । आहत कन्या (अभि. सा. 5) ने अपने परिसाक्ष्य में यह कथन किया है कि सुसंगत तारीख और समय पर जब वह अपने पिता (अभि. सा. 1) के कहने पर मुरमुरे खरीदने के लिए किरयाने की दुकान पर जा रही थी, अभियुक्त-अपीलार्थी उसका मुंह बन्द करके बलपूर्वक लाईब्रेरी के पीछे ले गया ताकि वह शोर न कर सके । लाईब्रेरी के पीछे की ओर अंधेरा था, जहां पर अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा आहत कन्या को लाया गया था और उसके अंतःवस्त्र उतारकर उसके साथ बलात्संग किया गया था । अभियुक्त-अपीलार्थी सुसंगत समय पर कैरम खेल रहा था और वह पुस्तकालय ग्राम के मुख्य मार्ग (जिसे मलिकाठी मेन रोड) से लगभग 50 मीटर की दूरी पर था और इसी पुस्तकालय के पीछे आहत को ले जाया गया था जिसका उल्लेख अभि. सा. 8 के साक्ष्य में किया गया है ।

28. आहत कन्या ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह साक्ष्य दिया है कि

जब उसे पुस्तकालय के पीछे ले जाया जा रहा था, तब अभियुक्त ने एक हाथ से उसका मुंह बन्द कर दिया और दूसरे हाथ से उसे दबोच कर रखा ताकि वह भाग न सके । इस प्रकार आहत कन्या ने उस परिस्थिति का चित्रण किया जो घटनास्थल पर घटित हुई थी जिससे यह स्पष्ट हुआ कि वह अभियुक्त-अपीलार्थी के इस अवांछनीय कृत्य के विरुद्ध शोर क्यों नहीं कर सकी । इस प्रकार आहत कन्या द्वारा उसके परिसाक्ष्य में किया गया वर्णन आबद्धकारी परिस्थितियों के अधीन विश्वसनीय प्रतीत होता है कि उसे बलपूर्वक पुस्तकालय के पीछे की ओर ले जाया गया था ताकि वह किसी प्रकार का कोई भी शोर न कर सके, और इस प्रकार वह अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा कारित अपराध का शिकार हुई । आहत कन्या द्वारा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के वर्णन से उसका चीख-पुकार न करना पूर्णतया संभावी हो जाता है जब उसे अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा पुस्तकालय के पीछे उसके साथ वासनापूर्ण कृत्य करने के लिए ले जाया गया था । इन परिस्थितियों में, इस बात की कोई गुंजाइश नहीं रहती है कि वह अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा किए गए कृत्य के प्रति शोर मचाती । इस प्रकार, आहत कन्या द्वारा किसी प्रकार का प्रतिरोध न करना या चीख-पुकार न करना ऐसा साक्ष्य नहीं है जिसके आधार पर अभियोजन पक्षकथन असंभावी ठहराया जाए । इस प्रकार हमारी सुविचारित राय में, विद्वान् न्यायमित्र द्वारा दी गई दलील स्वीकार्य नहीं है ।

29. स्वीकृतः इस मामले में आहत कन्या की आयु से संबंधित कोई भी दस्तावेज अर्थात् अस्थि-परीक्षण प्रमाणपत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है और आहत कन्या की चिकित्सा परीक्षा जिस चिकित्सक द्वारा कराई गई थी, उसकी परीक्षा विचारण के दौरान इस मामले में न्यायालय में नहीं कराई गई है ।

30. अन्वेषण में आई ऐसी कमियों को निर्दिष्ट करते हुए, विद्वान् न्यायमित्र ने यह अभिकथन करते हुए अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषमुक्ति के लिए प्रस्ताव रखा है कि आहत कन्या का इस संबंध में दिया गया सामान्य परिसाक्ष्य कि उसके साथ बलात्संग किया गया है, चिकित्सा साक्ष्य के आधार पर सिद्ध नहीं होता है । अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 9) के साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि उसने तारीख 15 अक्तूबर, 2008

को डा. राजशेखर द्वारा की गई आहत की चिकित्सा परीक्षा की रिपोर्ट प्राप्त की थी जो प्रदर्श 6 है अर्थात् पुलिस थाने में इस मामले के दर्ज किए जाने के ठीक अगले दिन । इस चिकित्सक की परीक्षा न कराए जाने के संबंध में कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है जिसने आहत कन्या की चिकित्सा परीक्षा की थी । इस चिकित्सक के परीसाक्ष्य को प्राप्त न करने के संबंध में हजारों संभाव्यताएं हो सकती हैं जिसने आहत कन्या का चिकित्सा उपचार किया था । आहत कन्या की चिकित्सा परीक्षा करने वाले चिकित्सक इस संसार से कूच कर गए हों, हो सकता है कि वे शारीरिक रूप से अक्षम हो गए हों, हो सकता है कि न्यायालय में बिना किसी विलम्ब के उपस्थित होने के लिए उनका वर्तमान पता आसानी से प्राप्त न हो सका हो । ये कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनकी संभावना हो सकती है किन्तु ऐसी संभाव्यताओं के आधार पर कोई भी कड़ा कदम नहीं उठाया जा सकता । प्रत्येक मामले की परिस्थितियां अलग-अलग और विशिष्ट प्रकार की होती हैं । प्रश्न यह उठता है कि क्या आहत कन्या की चिकित्सा परीक्षा करने वाले चिकित्सक की न्यायालय में परीक्षा न कराए जाने से आहत कन्या का परिसाक्ष्य असंभावी हो जाता है या नहीं ।

31. आहत कन्या की आयु से संबंधित किसी ठोस दस्तावेज प्राप्त न किए जाने, आहत कन्या की आयु के संबंध में तत्काल अस्थि-परीक्षण न कराए जाने पर आहत कन्या की माता (अभि. सा. 3) और स्वयं आहत कन्या (अभि. सा. 5) के मौखिक परिसाक्ष्य से घटना के समय आहत कन्या की आयु उपदर्शित होती है जो कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के उपबंधों के अधीन अत्यन्त महत्वपूर्ण साक्ष्य है । ऐसे मौखिक परिसाक्ष्य पर विचार करने पर यह माना जा सकता है कि आहत कन्या की आयु 12 वर्ष से कम थी अर्थात् ऐसी आयु जो सम्मति देने के लिए पर्याप्त न हो । आहत कन्या की चिकित्सा परीक्षा करने वाले चिकित्सक की परीक्षा न्यायालय में न कराए जाने से अभियोजन अभिकरण की अक्षमता प्रतीत होती है किन्तु अन्वेषण प्रक्रिया में आई कमी हमारी राय में दोषमुक्ति का आधार नहीं बन सकती ।

32. विद्वान् न्यायमित्र द्वारा उठाए गए इस मुद्दे पर उच्चतम

न्यायालय द्वारा **सी. मुनियप्पन और अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले के पैरा 44 और पैरा 55 में निम्न प्रकार मत व्यक्त किया गया है :-

> "55. ऐसा भी हो सकता है कि किसी मामले में अत्यन्त त्रुटिपूर्ण अन्वेषण किया गया हो । तथापि, यह देखना चाहिए कि क्या अन्वेषण अधिकारी की ओर से कोई खामी कारित की गई है और क्या ऐसी खामी के आधार पर अभियुक्त को लाभ दिया जाना चाहिए या नहीं । इस मुद्दे पर विधि सुस्थापित है कि अन्वेषण में आई मात्र कमी दोषमुक्ति का आधार नहीं बन सकती । यदि बनावटी या उपेक्षापूर्ण किए गए अन्वेषण या लोप और खामियों को महत्व दिया जाए, तब लोगों का आपराधिक न्यायशास्त्र से विश्वास उठ जाएगा । ऐसे मामले जिनमें अन्वेषण अभिकरण द्वारा लापरवाही बरती जाती है या लोप आदि कारित किए जाते हैं जिनसे अन्वेषण त्रुटिपूर्ण हो जाए, तब न्यायालय का यह विधिक कर्तव्य बन जाता है कि अभियोजन साक्ष्य पर सावधानीपूर्वक विचार करे ताकि यह पता लगाया जा सके कि साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं और यह साक्ष्य किस सीमा तक विश्वसनीय है और क्या इन कमियों से सच्चाई प्रभावित होती है । अतः अन्वेषण विचारण प्रक्रिया में न्यायिक संवीक्षा के लिए एकमात्र विषय नहीं है । मामले में विचारण प्रक्रिया का निपटारा मात्र अन्वेषण के आधार पर नहीं किया जा सकता ।"

33. विचारण के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न न्यायालय की बाध्यता के संबंध में है कि उसका कर्तव्य सम्पूर्ण अभियोजन साक्ष्य पर सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि उक्त साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं और यह सुनिश्चित किया जा सके कि क्या ऐसी खामियां सच्चाई का पता लगाने में बाधा बन सकती हैं या नहीं ।

34. चिकित्सा परीक्षा रिपोर्ट को इस मामले में बिना किसी आक्षेप

---

[1] (2010) 9 एस. सी. सी. 567 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3718.

के प्रदर्श के रूप में चिन्हांकित किया गया है । विद्वान् न्यायमित्र द्वारा यह दलील नहीं दी गई है कि आहत की चिकित्सा परीक्षा किसी भी चिकित्सक द्वारा घटना के पश्चात् नहीं कराई गई है । विद्वान् न्यायमित्र द्वारा यह दलील दी गई है कि चिकित्सीय साक्ष्य अर्थात् प्रदर्श 6 यह न्यायोचित ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं है कि आहत कन्या के साथ बलात्संग किया गया है । जैसा कि इस मामले में पहले ही चर्चा की गई है अप्राप्तवय कन्या के साथ, जिसकी आयु 7 से 10 वर्ष थी, बलात्संग किया गया है, यदि अन्वेषण में कोई लोप या कमी अभियोजन अभिकरण की ओर से रह गई है और उसे महत्व दिया जाता है तब दांडिक विचारण का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाएगा । अतः अन्वेषण की असफलता और अभियोजन अभिकरण की अक्षमता इन परिस्थितियों में अधिक महत्वपूर्ण नहीं है अर्थात् ऐसी परिस्थितियां जिनमें आहत कन्या का परिसाक्ष्य अन्यथा विश्वसनीय, स्वीकार्य और विश्वासोत्पादक हो ।

35. जहां तक क्लब संबंधी शत्रुता का संबंध है जिसके आधार पर अभियुक्त-अपीलार्थी को मिथ्या फंसाए जाने का अभिवाक् किया गया है, हमारा ध्यान विद्वान् न्यायमित्र द्वारा की गई अभि. सा. 1 से अभि. सा. 8 की प्रतिपरीक्षा की ओर दिलाया गया है जिसमें अपीलार्थी की दोषमुक्ति के लिए बलपूर्वक दलील दी गई है । उक्त साक्षियों की प्रतिपरीक्षा से यह प्रकट होता है कि उस इलाके में अर्थात् ग्राम में दो क्लब बने हुए थे और इस मामले के साक्षी इनमें से एक क्लब के अनुयायी हैं जबकि अभियुक्त-अपीलार्थी दूसरे क्लब का समर्थक है । इन दोनों क्लब के सदस्यों के बीच झगड़ा हो गया था । यह झगड़ा अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा किए गए क्लब के निर्माण को लेकर भूमि से संबंधित था । दोनों क्लबों के सदस्यों ने एक दूसरे का समर्थन नहीं किया है । दोनों क्लबों के सदस्यों के बीच लड़ाई हुई जिसके परिणामस्वरूप मामला दर्ज कराया गया और दूसरे पक्ष के विरुद्ध भी एक प्रति-मामला दर्ज कराया गया । आहत कन्या के माता-पिता अर्थात् अभि. सा. 1 और अभि. सा. 3 ने क्लब के सदस्यों के साथ अच्छे संबंध बनाए हुए थे जो इस मामले में साक्षी हैं और अभियुक्त-अपीलार्थी के क्लब के विरोधी हैं । आहत कन्या की माता (अभि. सा. 3) ने यह देखा कि दोनों

क्लबों के सदस्य किसी मुद्दे पर झगड़ा कर रहे हैं । ऊपर चर्चा किए गए साक्ष्य को निर्दिष्ट करते हुए विद्वान् न्यायमित्र ने यह सिद्ध करने की ईप्सा की है कि चूंकि अभियुक्त-अपीलार्थी ने इस लड़ाई में, जो इस घटना से कुछ ही महीनों पूर्व घटित हुई थी, विशेष भूमिका निभाई है, शिकायतकर्ता पक्ष के परिवार ने आहत कन्या का प्रयोग एक हथियार के रूप में किया है ताकि अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध मिथ्या मामला दर्ज कराया जा सके और कुछ व्यक्तियों के मन की ईच्छा पूरी हो सके जो अभियुक्त-अपीलार्थी के क्लब के विरुद्ध हैं ।

36. इस संबंध में साक्ष्य बिल्कुल स्पष्ट हैं कि शिकायतकर्ता पिता, उसकी पत्नी और आहत कन्या ने क्लब के सदस्यों के साथ सौहार्द संबंध बनाए हुए थे जो इस मामले में साक्षी हैं और अभियुक्त-अपीलार्थी का संबंध विरोधी क्लब से है ।

37. अभिलेख पर यह भी साक्ष्य है कि शिकायतकर्ता परिवार गरीबी रेखा से नीचे है और आहत कन्या का पिता भीख मांगकर अपने परिवार का भरणपोषण करता है । न तो आहत के माता-पिता, और न ही स्वयं आहत प्रत्यक्षतः क्लब के सदस्यों से जुड़े हुए नहीं थे न ही उन्हें उस क्लब से कोई संरक्षण प्राप्त था । इस संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है कि परीक्षा किए गए साक्षियों ने शिकायकर्ता परिवार के सदस्यों को उनके भरणपोषण के लिए किसी प्रकार की कोई वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई है जिसके बिना यह विश्वास करना कठिन होगा कि जो कुछ उन्होंने इस मामले में अभिसाक्ष्य दिया है वह विचारण के दौरान इस मामले में परीक्षा किए गए साक्षियों के प्रभाव का परिणाम है । सौहार्द संबंध बनाकर रखना या क्लब के सदस्यों से मुलाकात करते रहने से यह साबित नहीं होता है कि अभि. सा. 1, अभि. सा. 3 और अभि. सा. 5 का प्रयोग क्लब के सदस्यों अर्थात् अभि. सा. 2 और अभि. सा. 4 से अभि. सा. 8, गलत रूप में किया गया है ताकि वे क्लब संबंधी शत्रुता का बदला ले सकें । ऐसे साक्षियों की विश्वसनीयता पर इस आधार पर संदेह नहीं किया जा सकता है कि क्लब के वे सदस्य, जिन्होंने इस मामले में साक्ष्य दिया है, शिकायतकर्ता पिता की सहायता के लिए तब

आगे आए हैं जब उन्हें अभियुक्त-अपीलार्थी द्‌वारा आहत के साथ बलात्संग किए जाने की जानकारी मिली है । विद्‌वान् न्यायमित्र द्‌वारा दी गई दलील महत्वपूर्ण नहीं है ।

38. अपीलार्थी के विद्‌वान् न्यायमित्र द्‌वारा दी गई दलील, जैसा कि निःसंदेह प्रतीत होता है कि आहत कन्या की योनिच्छद में छोटा सा एकमात्र कटाव आया है और इसके अतिरिक्त इसके समर्थन में उसकी योनि से संबंधित अन्य कोई साक्ष्य नहीं है, अतः इसके आधार पर अभियुक्त को दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता । जैसा कि पहले ही चर्चा की गई है अपीलार्थी द्‌वारा इस अपील में यह मुद्दा उठाया गया है कि आहत कन्या की योनिच्छद से संबंधित साक्ष्य अपर्याप्त है किन्तु आहत कन्या की चिकित्सा परीक्षा करने वाले चिकित्सक की परीक्षा न्यायालय में न कराए जाने के संबंध में ऐसा आक्षेप नहीं किया गया है । अतः विचार के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या आहत कन्या के योनिच्छद में आया छोटा कटाव आहत कन्या के इस परिसाक्ष्य का समर्थन करता है या नहीं कि अपीलार्थी द्‌वारा उसके साथ बलात्संग किया गया है ।

39. हमारा ध्यान आहत कन्या की चिकित्सा परीक्षा रिपोर्ट जिसे प्रदर्श 6 के रूप में चिन्हांकित किया गया है जिसे अन्वेषण के दौरान अन्वेषण अधिकारी द्‌वारा प्राप्त किया गया है । इस रिपोर्ट में, आहत कन्या के योनिच्छद में एक छोटा कटाव पाया गया है जिसके समर्थन में आहत ने तारीख 15 अक्तूबर, 2008 को दोपहर 12.00 बजे अपनी चिकित्सा परीक्षा के समय चिकित्सक के समक्ष यह साक्ष्य दिया था कि उसे अभियुक्त-अपीलार्थी द्‌वारा ले जाया गया था इसके पश्चात् उसके साथ बलात्संग किया गया था । अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 9) की प्रतिपरीक्षा से यह दर्शित होता है कि आहत कन्या के योनिच्छद में कटाव पाए जाने के अतिरिक्त अन्य कोई क्षति, जैसे सूजन, रगड़ आदि नहीं पाई गई है । आहत कन्या की चिकित्सा परीक्षा के दौरान सभी मापदंड सामान्य पाए गए हैं । विचार के लिए सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि आहत ने अपनी चिकित्सा परीक्षा के समय चिकित्सक के समक्ष

ऐसा कथन क्यों दिया जबकि आहत की या आहत के माता-पिता की अभियुक्त-अपीलार्थी के साथ पहले से कोई दुश्मनी नहीं थी । आहत कन्या (अभि. सा. 5) के इस परिसाक्ष्य की संपुष्टि उसकी चिकित्सा रिपोर्ट अर्थात् प्रदर्श 6 से होती है कि अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा उसके साथ बलात्संग किया गया है । अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा आहत कन्या के साथ बलात्संग किए जाने का अभिकथन सभी युक्तियुक्त संदेह के परे वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो गया है ।

40. हमें आहत की प्रतिपरीक्षा को अनदेखा नहीं करना चाहिए जिससे यह पता चलता है कि वह अपने साथ के बच्चों के साथ खेला करती थी और जब खेल के दौरान वह उछल-कूद करती थी जो हमारी राय में एक सुसंगत साक्ष्य है किन्तु आहत कन्या की चिकित्सा रिपोर्ट के साथ मेल नहीं खाता है । जब मामला दर्ज किए जाने के अगले दिन आहत कन्या की चिकित्सा परीक्षा चिकित्सक द्वारा कराई गई, तब उसकी योनिच्छद में कटाव का पाया जाना अभियुक्त-अपीलार्थी को आवश्यक रूप से अपराध से संबद्ध करता है, भले ही आहत की योनि में आया कटाव छोटा ही क्यों न हो । आहत कन्या के साथ बलात्संग किए जाने की संभाव्यता उसकी प्रतिपरीक्षा से प्रभावित नहीं होती है और इस तथ्य से भी यह संभाव्यता प्रभावित नहीं होती है कि आहत कन्या अपने साथ के बच्चों के साथ खेल-कूद किया करती थी और इस कारण उसकी योनिच्छद में कटाव आया था । यद्यपि आहत कन्या की चिकित्सा परीक्षा करने वाले चिकित्सक द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट में कोई भी निश्चित राय व्यक्त नहीं की गई है किन्तु आहत कन्या (अभि. सा. 5) के परिसाक्ष्य का संचयी रूप से परिशीलन करने पर एकमात्र निष्कर्ष यह निकलता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा आहत के साथ बलात्संग किया गया है, जिसके संबंध में चिकित्सक द्वारा चिकित्सा परीक्षा करने के दौरान टिप्पणी की गई है कि आहत कन्या के योनिच्छद में छोटा सा कटाव है । आहत कन्या की योनि में इसके अतिरिक्त अन्य कोई समवर्ती क्षति नहीं पाई गई है, यद्यपि यह तथ्य सुसंगत है किन्तु यह ऐसे मामले में सदैव निश्चायक नहीं माना जा सकता जहां 12 वर्ष से

कम आयु की कन्या के साथ बलात्संग किया गया हो और जिसकी स्वीकृत रूप से सुसंगत समय के दौरान अभियुक्त-अपीलार्थी के साथ कोई शत्रुता न हो ।

41. साक्ष्य में पाए गए विरोधाभासों और फर्कों के संबंध में विद्वान् न्यायमित्र द्वारा हमारा ध्यान अभि. सा. 4, अभि. सा. 5 और अभि. सा. 5 के साक्ष्य की ओर दिलाया गया है जिसमें अन्वेषण अधिकारी/अभि. सा. 9 की प्रतिपरीक्षा को भी निर्दिष्ट किया गया है । अपीलार्थी के अनुसार यह विरोधाभास इस प्रकृति के और इस सीमा तक हैं कि इनके आधार पर उनके परिसाक्ष्यों का अवलंब लेते हुए अभियोजन वृत्तान्त को संदिग्ध ठहराया जा सकता है ।

42. साक्ष्य में विरोधाभास, फर्क और असंगतताएं प्रकट हुई हैं ।

43. अपीलार्थी के अनुसार, साक्ष्य में आए ऐसे फर्क इस प्रकृति और इस सीमा के हैं जिनसे अभियोजन वृत्तान्त में घोर संदेह उत्पन्न हो जाता है जिसके आधार पर अभियुक्त-अपीलार्थी को दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता ।

44. राज्य/प्रत्यर्थी का यह पक्षकथन है कि साक्ष्य में आए विरोधाभास महत्वपूर्ण और सारभूत नहीं हैं और इनका संबंध अभियोजन पक्षकथन के मूल आधार से नहीं है ।

45. साक्षियों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य की सूक्ष्मता से संवीक्षा करने पर हमारी यह सुविचारित राय है कि फर्क या असंगतताओं से मामले पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि इनसे अभियोजन पक्षकथन का मूल सार प्रभावित नहीं होता है ।

46. यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अभिलिखित कथन के साथ-साथ अभि. सा. 4 और अभि. सा. 8 के परिसाक्ष्य में कुछ असंगतताएं पाई गई हैं जिनके साक्ष्यों का अवलंब विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया है किन्तु दोनों साक्षियों ने अपने-अपने साक्ष्य में यह उल्लेख किया है कि उन्होंने अभियुक्त-अपीलार्थी को

घटनास्थल से किस प्रकार भागते हुए देखा था । तथापि, इन साक्षियों के साक्ष्य का यह भाग उनकी प्रतिपरीक्षा के दौरान विचलित नहीं हुआ है । उपरोक्त चर्चा के आधार पर अभि. सा. 4 और अभि. सा. 8 के समक्ष अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा दिए गए संस्वीकृति कथन के संबंध में किया गया अभिकथन स्वीकार्य नहीं है ।

47. विद्वान् न्यायमित्र ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी है कि अभियुक्त-अपीलार्थी के साथ इन साक्षियों की अपने-अपने क्लब को लेकर पुरानी दुश्मनी के कारण उनका परिसाक्ष्य विश्वासोपादक प्रतीत नहीं होता है । पक्षकारों के बीच शत्रुता, जैसा कि विद्वान् न्यायमित्र द्वारा दावा किया गया है, दोधारी तलवार है । इसके आधार पर मिथ्या फंसाए जाने का अभिवाक् किया जा सकता है और साथ ही इसके आधार पर किसी व्यक्ति विशेष से शत्रुता भी प्रकट होती है । ऐसी स्थिति में यह अपेक्षा की जाती है कि ऐसे साक्षियों के साक्ष्य पर सावधानीपूर्वक संवीक्षा करते हुए पूरी सतर्कता के साथ विचार किया जाना चाहिए । इस सिद्धांत के आधार पर, हमारे मतानुसार आपराधिक न्यायशास्त्र साक्षियों और अपीलार्थी के बीच मात्र शत्रुता होने से और वह भी तर्कसम्मत् साक्ष्य के अभाव में, साक्षियों का परिसाक्ष्य अविश्वसनीय नहीं हो सकता ।

48. आहत कन्या के माता-पिता (अभि. सा. 1 और अभि. सा. 3) को घटना की जानकारी सुसंगत तारीख को उनकी पुत्री के घर वापस आने पर उससे ही मिली कि उसके साथ बलात्संग किया गया है । अभि. सा. 2, अभि. सा. 4, अभि. सा. 6 और अभि. सा. 7 जैसे साक्षी घटना घटित होने के बाद के साक्षी हैं और उनका साक्ष्य अनुश्रुत साक्ष्य की कोटि में आता है जिनके आधार पर अपराध कारित किया जाना साबित नहीं हो सकता । आहत कन्या के माता-पिता के साक्ष्य से संबंधित दी गई दलील की आहत कन्या (अभि. सा. 5) के परिसाक्ष्य से पुष्टि की जा सकती है ।

49. अभि. सा. 1, अभि. सा. 3, अभि. सा. 5 और अभि. सा. 8 के साक्ष्य की बारीकी से संवीक्षा करने पर यह प्रतीत होता है कि उनका परिसाक्ष्य अन्तर्निहित रूप से संभावी होने के कारण विश्वसनीय है ।

50. अभियुक्त-अपीलार्थी को दोषी अभिनिर्धारित किए जाने के पश्चात् दोषसिद्धि का आदेश उन आधारों पर त्रुटिपूर्ण या संदिग्ध नहीं होना चाहिए जिनका उल्लेख अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् न्यायमित्र द्वारा किया गया है ।

51. इस प्रकार दोषसिद्धि का निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता । विचारण न्यायालय द्वारा इस मामले में अधिनिर्णीत दंडादेश दंड अधिनिर्णीत किए जाने के सिद्धांत से मेल खाने के आधार पर अपरिवर्तनीय रहेगा ।

52. इस प्रकार, दोषसिद्धि का आदेश और दंडादेश कायम रखे जाते हैं ।

53. यह अपील, गुणता न होने के आधार पर, निष्फल होती है ।

54. अभिलेख का निपटारा करने के पूर्व हम विद्वान् न्यायमित्र श्री पार्थो सारथी भट्टाचार्य द्वारा दी गई महत्वपूर्ण सहायता की सराहना करते हैं जबकि अभियुक्त-अपीलार्थी को व्यर्थ ही प्रशासनिक नोटिस तामील कराया गया है ।

55. इस प्रकार इस अपील का निपटारा किया जाता है ।

56. इस निर्णय की एक प्रति विद्वान् निचले न्यायालय के अभिलेख के साथ विद्वान् जिला न्यायाधीश के माध्यम से उसको तत्काल भेजे जाने का निर्देश दिया जाता है ।

57. इस आदेश और निर्णय की अनुप्रमाणित प्रति, यदि आवेदित है, पक्षकारों को आवश्यक औपचारिकताएं पूरी किए जाने पर यथाशीघ्र उपलब्ध कराई जाए ।

न्यायमूर्ति मुंशी – मैं सहमत हूं ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

हरिकृष्णन

बनाम

केरल राज्य

(2013 की दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 725)

तारीख 10 जून, 2019

न्यायमूर्ति आर. नारायण पिशराडी

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 306 और 107 – आत्महत्या का दुष्प्रेरण – जब अभियुक्त अपने कृत्य या अपने निरन्तर आचरण द्वारा ऐसी परिस्थितियां पैदा कर देता है कि मृतक के पास आत्महत्या के सिवाय कोई विकल्प न बचे, तब अभियुक्त आत्महत्या के दुष्प्रेरण का दोषी होगा अन्यथा नहीं ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 306 और 107 [दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 और 154] – आत्महत्या का दुष्प्रेरण – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का अभिखंडित किया जाना – वर्ष 2010 और 2011 में बैंक द्वारा ऋण नामंजूर किया जाना और वर्ष 2012 में आहत द्वारा आत्महत्या किया जाना – अभियुक्त के कृत्य और मृतका के कृत्य के बीच सामीप्य का न पाया जाना – ऋण आवेदन बैंक के उच्च अधिकारियों द्वारा खारिज किया गया है और वह भी घटना से काफी समय पूर्व, अतः दोनों कृत्यों के बीच सीधा संबंध और सामीप्य न पाए जाने पर दुष्प्रेरण का अपराध गठित नहीं होता है और आवेदक के विरुद्ध की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट न्यायोचित नहीं है ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 306 और 107 – आत्महत्या का दुष्प्रेरण – आहत द्वारा यह कहा जाना कि अगर ऋण मंजूर न किया गया तो वह आत्महत्या कर लेगी – क्रोध में आकर या भावुक होकर अनाशयित रूप से अभियुक्त द्वारा अभिकथित शब्दों का प्रयोग किया जाना – अभियुक्त/आवेदक द्वारा अभिकथित रूप से पीड़िता से यह

क्रोध में या भावुक होकर यह कहना कि 'जाओ और आत्महत्या कर लो', आपराधिक मनःस्थिति के अभाव में आत्महत्या के दुष्प्रेरण की कोटि में नहीं आ सकता ।

श्रुति एक ऐसी छात्रा थी जिसका नर्स का व्यवसाय करने का सपना था । उसका संबंध एक निर्धन परिवार से था । यह एक कटु सत्य है कि उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के लिए काफी धन आवश्यक होता है । उसने शिक्षा-ऋण लेने के लिए कई बार बैंक में आवेदन किया । बैंक ने उसका आवेदन नामंजूर कर दिया । निराश होकर उसने नाशक जीवमार खाकर आत्महत्या कर ली । उस बैंक के दो अधिकारी आत्महत्या के दुष्प्रेरण के लिए अभियोजन प्रक्रिया भोग रहे हैं । मृतका ने तारीख 17 अप्रैल, 2012 को नाशक जीवमार का सेवन किया था । उसे उसी दिन अस्पताल में भर्ती कराया गया । तारीख 30 अप्रैल, 2012 को पूर्वाह्न 7.40 बजे उसकी मृत्यु हो गई । शवपरीक्षण रिपोर्ट से यह पता चलता है कि उसकी मृत्यु विषपान से हुई है । इस मामले में द्वितीय प्रत्यर्थी मृतका का भाई है जिसने तारीख 30 अप्रैल, 2012 को पूर्वाह्न 8.30 बजे इस मामले की सूचना अपने कथन के माध्यम से पुलिस को दी थी । उक्त कथन के आधार पर पुलिस थाना कोट्टयम-पश्चिम में अपराध सं. 440/2012 के अनुसार भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में दंड संहिता कहा गया है) की धारा 306 के अधीन मामला दर्ज कराया गया । आरंभ में प्रथम आवेदक ही इस मामले में अभियुक्त था । इसके पश्चात्, द्वितीय आवेदक को इस मामले में द्वितीय अभियुक्त के रूप में आलिप्त किया गया । मामले का अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् पुलिस ने दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 306 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आवेदकों के विरुद्ध अन्तिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) उपाबंध-क के रूप में प्रस्तुत किया । आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने के पश्चात् संबंधित मजिस्ट्रेट ने यह मामला सेशन न्यायालय, कोट्टयम को सुपुर्द कर दिया । अब यह मामला सेशन मामला सं. 1/2013 के रूप में उस न्यायालय में लंबित है । आवेदकों ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे संक्षेप में संहिता कहा गया है) की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की शक्ति का अवलंब लेते हुए उपर्युक्त मामले में सभी

कार्यवाहियों को अभिखंडित कराने की ईप्सा की है । उच्च न्यायालय द्वारा आवेदन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – उकसाहट को गठित करने के लिए जो व्यक्ति किसी को उकसाता है, उसे प्रकोपित, उद्दीपित, प्रेरित या उत्साहित घोर आग्रह के साथ करना चाहिए । प्रेरित करने का शाब्दिक अर्थ किसी व्यक्ति को क्रियाशील बनाना है, क्रिया या प्रतिक्रिया के लिए प्रकोपित करना है, किसी व्यक्ति को तब तक चिढ़ाते रहने है जब तक कि वह प्रतिक्रिया न करे । इसी प्रकार, अनुरोध का अर्थ किसी व्यक्ति के समक्ष घोर आग्रह करना है ताकि वह व्यक्ति और अधिक तीव्रता से किसी विशेष दशा में कार्य करे विशेषकर ऐसे व्यक्ति पर बल का प्रयोग किए जाने की स्थिति में । अतः, ऐसा व्यक्ति जो दूसरे व्यक्ति को प्रेरित करता है या उकसाता है, तब यह कहा जाएगा कि पहला व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को साशय प्रकोपित या उत्साहित करता है । जब कोई अभियुक्त अपने कृत्य से या अपने आचरण से ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है कि मृतक के पास आत्महत्या के सिवाए अन्य कोई विकल्प न बचे, तब इसे उकसाना कहा जा सकता है । दूसरे शब्दों में, यह साबित करने के लिए कि अभियुक्त ने किसी व्यक्ति को आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरित किया है, तब यह सिद्ध किया जाना चाहिए कि अभियुक्त मृतक को शब्दों, कृत्यों या जानबूझकर किए गए लोपों या आचरण, जो जानबूझकर किया गया मौन धारण भी हो सकता है, से तब तक चिढ़ाता है जब तक कि मृतक प्रतिक्रिया न कर दे; या अभियुक्त अपने कृत्यों, शब्दों या जानबूझकर किए गए लोपों या आचरण से मृतक पर बल का प्रयोग करता है जिसके परिणामस्वरूप मृतक तेजी के साथ किसी दिशा में बढ़ता है; और यह कि अभियुक्त का आशय मृतक को आत्महत्या करने के लिए उपरोक्त रूप में प्रकोपित करना या उत्साहित करना हो । उकसाने के अपराध को गठित करने के लिए आपराधिक मनःस्थिति एक आवश्यक अवयव है । (पैरा 15)

वर्तमान मामले के तथ्यों पर ऊपर उल्लिखित सिद्धांतों के आधार पर विचार किया जाना चाहिए । केस डायरी में इंडियन बैंक्स एसोसिएशन द्वारा जारी शिक्षा-ऋण की मंजूरी से संबंधित सन्नियमों की

एक प्रति अन्तर्विष्ट है जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा निचले न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है । इससे यह दर्शित होता है कि 4,00,000/- रुपए तक शिक्षा-ऋण मंजूर करने के लिए छात्र के माता-पिता की सहबाध्यता सुनिश्चित की जाए । यह भी कथन किया गया है कि ऋण दस्तावेज छात्र और माता-पिता/संरक्षक दोनों के द्वारा संयुक्त-ऋणी के रूप में निष्पादित किए जाने चाहिए । सन्नियमों के अधीन यह भी उपबंध किया गया है कि शिक्षा-ऋण मंजूर किए जाने के लिए पूर्व-शर्त के रूप में यह आवश्यक नहीं है कि 'बकाया-मुक्त' प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया जाए किन्तु बैंक इस संबंध में घोषणा-पत्र/शपथपत्र मान सकते हैं कि उस आवेदक ने अन्य किसी बैंक से ऋण नहीं लिया हुआ है । वर्ष 2010 और 2011 में मृतका द्वारा प्रस्तुत किए गए ऋण आवेदनों का तारीख 16 मार्च, 2012 को खारिज किया जाना, चाहे कारण कुछ भी रहा हो, आवेदकों द्वारा किया गया उकसाहट का ऐसा कृत्य नहीं कहा जा सकता जिसके कारण मृतका ने अप्रैल, 2012 में आत्महत्या की । मृतका द्वारा वर्ष 2010 और 2011 में प्रस्तुत किए गए आवेदनों के तारीख 16 मार्च, 2012 को आवेदकों द्वारा खारिज किए जाने और इतने लम्बे समय के बाद मृतका द्वारा आत्महत्या किए जाने के बीच कोई भी सीधा संबंध नहीं है । आवेदकों द्वारा अभिकथित रूप से कारित किए गए कृत्य और आहत द्वारा की गई आत्महत्या के बीच कोई भी समय निकटता नहीं है । अभियुक्त द्वारा किए गए दुष्प्रेरण के अभिकथित कृत्य और आहत के (आत्महत्या) के कृत्य के बीच समय की सन्निकटता परमावश्यक है । यदि अभियुक्त द्वारा किए गए दुष्प्रेरण के अभिकथित अपराध के लम्बे समय के बाद आहत ने आत्महत्या की है तब यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि अभियुक्त के कृत्य और आहत द्वारा की गई प्रतिक्रिया के बीच कोई संबंध है । अभियुक्त के कृत्य और आहत द्वारा की गई आत्महत्या के बीच लम्बे समयान्तराल से यह निष्कर्ष नकारात्मक हो जाता है कि परिस्थितियां ऐसी हो गई थीं कि आहत के पास अपनी जीवन-लीला समाप्त करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं बचा था, इसलिए उसने आत्महत्या कर ली । उपरोक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि वर्ष 2010 और 2011 में मृतक द्वारा प्रस्तुत किए गए ऋण-आवेदनों का तारीख 16

मार्च, 2012 को आवेदकों द्वारा खारिज किया जाना दुष्प्रेरण के ऐसे कृत्य की कोटि में आता है जिसके परिणामस्वरूप आहत ने अप्रैल, 2012 में आत्महत्या कर ली । द्वितीय आवेदक सुसंगत समय पर कोट्टयम स्थित बैंक में उप-प्रबंधक के पद पर कार्यरत था । तारीख 16 मार्च, 2012 को मृतका द्वारा शिक्षा-ऋण के लिए प्रस्तुत किए गए आवेदन के खारिज किए जाने में द्वितीय आवेदक की विशिष्ट भूमिका नहीं है और न ही तारीख 14 अप्रैल, 2012 को मृतका द्वारा प्रस्तुत किए गए ऋण आवेदन पर कार्यवाही करने में उसकी कोई भूमिका है । (पैरा 19, 20, 24, 25 और 26)

यदि प्रथम आवेदक के विरुद्ध किए गए इस अभिकथन को उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त की गई निर्णय-विधि की कसौटी पर परखा जाए कि 'जाओ और आत्महत्या कर लो', तब यह निष्कर्ष निकलता है कि उसके द्वारा इन शब्दों का बोला जाना, आत्महत्या के लिए उकसाने वाले कृत्य की कोटि में नहीं आता है । यह उल्लेखनीय है कि अभियोजन पक्षकथन के अनुसार भी जब मृतका ने प्रथम आवेदक से कहा था कि यदि उसे ऋण मंजूर नहीं किया गया तो उसके पास मरने के सिवाय कोई विकल्प नहीं होगा, तब प्रथम आवेदक ने मृतका से चले जाने और ऐसे करने के लिए कहा था । अभियोजन पक्षकथन के अनुसार भी मर जाने से संबंधित बात भी पहली बार प्रथम आवेदक द्वारा नहीं कही गई थी । प्रथम आवेदक ने मृतका को जिस प्रकार, जिस स्थिति में, आक्रोश में आकर, भावुक होकर जिस प्रकार अचानक जवाब दिया है उससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि उसने मृतका को आत्महत्या करने के लिए उकसाया है । (पैरा 37 और 38)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2010]	(2010) 8 एस. सी. सी. = 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5101 : **मदन मोहन सिंह** बनाम **गुजरात राज्य** ;	21
[2002]	ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 1998 : **संजू** उर्फ **संजय सेंगर** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	23, 35

[2001]	ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 3837 : **रमेश कुमार** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** ;	14, 33
[1995]	(1995) 3 (सप्ली.) एस. सी. सी. 438 = ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 94 : **स्वामी प्रहलादास** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ।	34

निर्दिष्ट निर्णय

[2017]	ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 2459 : **पवन कुमार** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** ;	36
[2015]	आई. एल. आर. 2015 (3) केरल 826 : **अभिलाष** बनाम **केरल राज्य** ;	30
[2013]	ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 542 : **परबीन अली** बनाम **असम राज्य** ;	30
[2012]	(2012) 9 एस. सी. सी. 734 = 2012 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5372 : **प्रवीन प्रधान** बनाम **उत्तरांचल राज्य** ;	17
[2011]	ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1238 : **मोहन** बनाम **राज्य** ;	16
[2010]	ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 327 : **गंगुला मोहन रेड्डी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	16
[2010]	ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 512 : **अमलेन्दु पाल** उर्फ **झन्टू** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	
[2010]	ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 1446 : **चित्रेश कुमार चोपड़ा** बनाम **राज्य** ;	12
[2002]	ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 2780 : **श्रीनिवासुलू** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	30

[1992] (1992) 4 एस. सी. सी. 225 = ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 65 :
प्रकाश बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** । 30

अन्तर्निहित (दांडिक) अधिकारिता : 2013 की दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 725.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित कराने के लिए आवेदन ।

आवेदक की ओर से	सर्वश्री एस. श्रीकुमार (ज्येष्ठ अधिवक्ता), पी. पोलोचन एन्टोनी, एम. ए. मोहम्मद सिराज, पी. मार्टिन जोस, पी. प्रिजीत और थॉमस पी. कुरुविला
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री एस. मनु (लोक अभियोजक) और सुश्री एम. एन. माया

आदेश

न्यायमूर्ति आर. नारायण पिशराडी – श्रुति एक ऐसी छात्रा थी जिसका नर्स का व्यवसाय करने का सपना था । उसका संबंध एक निर्धन परिवार से था । यह एक कटु सत्य है कि उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के लिए काफी धन आवश्यक होता है । उसने शिक्षा-ऋण लेने के लिए कई बार बैंक में आवेदन किया । बैंक ने उसका आवेदन नामंजूर कर दिया । निराश होकर उसने नाशक जीवमार खाकर आत्महत्या कर ली । उस बैंक के दो अधिकारी आत्महत्या के दुष्प्रेरण के लिए अभियोजन प्रक्रिया भोग रहे हैं ।

2. मृतका ने तारीख 17 अप्रैल, 2012 को नाशक जीवमार का सेवन किया था । उसे उसी दिन अस्पताल में भर्ती कराया गया । तारीख 30 अप्रैल, 2012 को पूर्वाह्न 7.40 बजे उसकी मृत्यु हो गई । शवपरीक्षण रिपोर्ट से यह पता चलता है कि उसकी मृत्यु विषपान से हुई है ।

3. इस मामले में द्विवतीय प्रत्यर्थी मृतका का भाई है जिसने तारीख 30 अप्रैल, 2012 को पूर्वाहन 8.30 बजे इस मामले की सूचना अपने कथन के माध्यम से पुलिस को दी थी । उक्त कथन के आधार पर पुलिस थाना कोट्टयम-पश्चिम में अपराध सं. 440/2012 के अनुसार भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में दंड संहिता कहा गया है) की धारा 306 के अधीन मामला दर्ज कराया गया । आरंभ में प्रथम आवेदक ही इस मामले में अभियुक्त था । इसके पश्चात्, द्विवतीय आवेदक को इस मामले में द्विवतीय अभियुक्त के रूप में आलिप्त किया गया । मामले का अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् पुलिस ने दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 306 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आवेदकों के विरुद्ध अन्तिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) उपाबंध-क के रूप में प्रस्तुत किया ।

4. आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने के पश्चात् संबंधित मजिस्ट्रेट ने यह मामला सेशन न्यायालय, कोट्टयम को सुपुर्द कर दिया । अब यह मामला सेशन मामला सं. 1/2013 के रूप में उस न्यायालय में लंबित है । आवेदकों ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे संक्षेप में संहिता कहा गया है) की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की शक्ति का अवलंब लेते हुए उपर्युक्त मामले में सभी कार्यवाहियों को अभिखंडित कराने की ईप्सा की है ।

5. आवेदकों के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री एस. श्रीकुमार और विद्वान् लोक अभियोजक श्रीमती एम. एन. माया तथा द्विवतीय प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री एस. मनु की सुनवाई की गई है । मैंने विद्वान् लोक अभियोजक द्वारा प्रस्तुत की गई केस डायरी का भी परिशीलन किया है ।

6. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने आवेदकों की ओर से हाजिर होकर यह दलील दी है कि यदि अन्तिम रिपोर्ट में किए गए अभिकथनों को याचियों के विरुद्ध यूं ही सत्य स्वीकार कर लिया जाए, तब भी दंड संहिता की धारा 306 के अधीन उनके विरुद्ध अपराध नहीं बनता है, अतः याचियों के विरुद्ध कार्यवाहियों का जारी रखना न्यायालय की

प्रक्रिया का दुरुपयोग है । इसके प्रतिकूल विद्वान् लोक अभियोजक तथा द्वितीय प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री से प्रथमदृष्ट्या यह दर्शित होता है कि आवेदकों ने मृतका को आत्महत्या करने के लिए दुष्प्रेरित किया है इसलिए संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की शक्ति का अवलंब इस प्रक्रम पर लेकर अभिखंडित नहीं किया जा सकता ।

7. इस मामले में प्रथम आवेदक सुसंगत समय पर कार्यरत एच. डी. एफ. सी. बैंक की कुदामलुर शाखा का प्रबंधक है और द्वितीय आवेदक उप-प्रबंधक (क्रेडिट) है ।

8. आवेदकों के विरुद्ध अन्तिम रिपोर्ट में निम्न अभिकथन किए गए हैं :–

(1) शिक्षा-ऋण मंजूर करने से संबंधित नियमों के अनुसार चार लाख रूपए तक के ऋण के लिए किसी भी प्रतिभू की आवश्यकता नहीं है किन्तु आवेदकों ने यह आग्रह किया कि मृतका इस ऋण को पाने के लिए प्रतिभू प्रस्तुत करे ।

(2) आवेदकों ने वर्ष 2010 में मृतका द्वारा शिक्षा-ऋण के लिए प्रस्तुत किए गए आवेदन को इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि उसकी माता, जिसे आवेदन पत्र में प्रतिभू के रूप में दिखाया भी नहीं गया है, के ऊपर लॉर्ड कृष्णा बैंक की देनदारी है ।

(3) प्रथम आवेदक ने मृतका की माता को बताया कि यदि बैंक को ऋण की बकाया राशि का भुगतान कर दिया जाता है, तब शिक्षा-ऋण मंजूर किया जाएगा । मृतका की माता ने बैंक में ऋण की बकाया राशि जमा कर दी । इसके बावजूद प्रथम अभियुक्त ने मृतका द्वारा प्रस्तुत किए गए शिक्षा-ऋण के आवेदन को नामंजूर कर दिया ।

(4) जब मृतका ने वर्ष 2011 में शिक्षा-ऋण के लिए आवेदन प्रस्तुत किया था, तब प्रथम आवेदक ने उसे यह बताया कि उसे

यह ऋण मंजूर नहीं किया जा सकता क्योंकि वह उच्चतर माध्यमिक परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हुई थी और यह कि उसने यह परीक्षा तत्पश्चात् उत्तीर्ण की है । द्वितीय आवेदक ने उक्त कारण देते हुए ऋण आवेदन नामंजूर करने के लिए मृतका को पत्र भेजा ।

(5) आवेदकों ने तारीख 16 मार्च, 2012 को मृतका द्वारा प्रस्तुत किए गए शिक्षा-ऋण के आवेदन को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि मृतका द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रतिभू पर पहले से इंडियन ओवरसीज बैंक की देनदारी बकाया है ।

(6) मृतका ने नए प्रतिभू के साथ तारीख 14 अप्रैल, 2012 को शिक्षा-ऋण के लिए नए सिरे से आवेदन किया किन्तु अभियुक्तों ने उस आवेदन पर कोई कार्यवाही नहीं की ।

(7) मृतका ने आंध्र प्रदेश के एक महाविद्यालय से बी. एससी. नर्सिंग के पाठ्यक्रम का प्रथम वर्ष सफलतापूर्वक पूरा किया । किन्तु वह धन की कमी के कारण अपनी शिक्षा जारी नहीं रख सकी और उसे बकाया फीस का भुगतान किए बिना महाविद्यालय से प्रमाण-पत्र वापस नहीं मिल सकते थे । अतः, तारीख 16 अप्रैल, 2012 को प्रथम आवेदक के पास गई और उसे बताया कि यदि उसे ऋण मंजूर नहीं किया गया तो उसकी शिक्षा जारी नहीं रह सकेगी और इसके पश्चात् आत्महत्या करने के सिवाय उसके पास कोई विकल्प नहीं बचेगा ।

9. विनिश्चत किए जाने के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या अन्तिम रिपोर्ट में याचियों के विरुद्ध किए गए पूर्वोक्त अभिकथनों से प्रथमदृष्ट्या दंड संहिता की धारा 306 के अधीन अपराध के संघटक पूरे होते हैं या नहीं ।

10. दंड संहिता की धारा 306 के अधीन यह उपबंधित है कि यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करे, तो जो कोई ऐसी आत्महत्या का दुष्प्रेरण करेगा, वह दोनों में से किसी भी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि 10 वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

11. दंड संहिता की धारा 107 के अधीन यह परिभाषित है कि वह व्यक्ति किसी बात के किए जाने का दुष्प्रेरण करता है जो उस बात को करने के लिए किसी व्यक्ति को उकसाता है अथवा उस बात को करने के लिए किसी षड्यंत्र में एक या अधिक अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ सम्मिलित होता है, यदि उस षड्यंत्र के अनुसरण में, और उस बात को करने के उद्देश्य से, कोई कार्य या अवैध लोप घटित हो जाए; अथवा उस बात के लिए किए जाने में किसी कार्य या अवैध लोप द्वारा साशय सहायता करता है । दंड संहिता की धारा 107 के स्पष्टीकरण के अधीन यह उपबंधित है कि जो कोई व्यक्ति जानबूझकर दुर्व्यपदेशन द्वारा, या तात्विक तथ्य, जिसे प्रकट करने के लिए वह आबद्ध है, जानबूझकर छिपाने द्वारा, स्वेच्छया किसी बात का किया जाना कारित या उपाप्त करता है अथवा कारित या उपाप्त करने का प्रयत्न करता है, वह उस बात का किया जाना उकसाता है, यह कहा जाता है । इस धारा के स्पष्टीकरण 2 के अनुसार यह उपबंधित है कि जो कोई या तो किसी कार्य के किए जाने से पूर्व या किए जाने के समय, उस कार्य के किए जाने को सुकर बनाने के लिए कोई बात करता है और तद्द्वारा उसके किए जाने को सुकर बनाता है, वह उस कार्य के करने में सहायता करता है, यह कहा जाता है ।

12. "Sui" का अर्थ "आत्म" है और "cide" का अर्थ "हत्या" है । इस प्रकार "Suicide" का अर्थ स्वयं की हत्या करना हुआ । खुद्दारी और आत्म-सम्मान को लेकर प्रत्येक व्यक्ति की सोच अलग ही होती है । एक व्यक्ति की संवेदनशीलता दूसरे व्यक्ति से अलग ही पाई जाती है । एक परिस्थिति में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का व्यवहार भिन्न-भिन्न होता है । अतः, ऐसे मामलों में कार्यवाही करने के लिए कोई भी सीधा-सीधा सूत्र अधिकथित करना संभव नहीं है । प्रत्येक मामले को उसके अपने तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर ही विनिश्चित किया जाना चाहिए (**मोहन** बनाम **राज्य**[1] वाला मामला देखिए) । मनुष्यों में आत्मघाती विचार और लक्षण बहुत जटिल और बहुरूपी पाए जाते हैं ।

---

[1] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1238.

अलग-अलग व्यक्ति एक जैसी स्थिति में अलग-अलग प्रतिक्रिया देते हैं और उनका व्यवहार भी अलग-अलग होता है क्योंकि वे प्रत्येक घटना को अलग तरीके से देखते हैं जिसके परिणामस्वरूप वे आत्महत्या की चपेट में आ जाते हैं । प्रत्येक व्यक्ति की आत्महत्या करने की भावना उसके अन्तर्मन और मानसिक पीड़ा, भय तथा अपमान की कोटि पर निर्भर करती है । इनमें प्रत्येक संघटक महत्वपूर्ण है जो किसी व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए उकसाता है जो कभी तो अपनी आत्मरक्षा की ओर अग्रसर होता है और कभी अपनी सहनशक्ति खो बैठता है । (**चित्रेश कुमार चोपड़ा** बनाम **राज्य**[1] वाला मामला देखिए)

13. वर्तमान मामले में दंड संहिता की धारा 107 के अधीन परिभाषित दुष्प्रेरण का द्वितीय अवयव अर्थात् अभियुक्त का किसी षडयंत्र में सम्मिलित होना और स्पष्टीकरण-1 किसी प्रकार भी लागू नहीं होगा । अभियोजन पक्ष का यह पक्षकथन नहीं है कि अभियुक्त ने मृतका द्वारा आत्महत्या किए जाने में कोई सहायता की थी । आवेदकों द्वारा मृतका को शिक्षा-ऋण मंजूर न किया जाना ऐसा अवैध लोप नहीं माना जा सकता जिसके आधार पर मृतका ने आत्महत्या की हो । अतः, दंड संहिता की धारा 107 में परिभाषित दुष्प्रेरण का तीसरा अवयव और इस धारा से संबंधित स्पष्टीकरण-2 भी किसी प्रकार लागू नहीं होंगे । विचारण के लिए अब यह प्रश्न है कि क्या आवेदकों द्वारा अभिकथित रूप से किया गया कृत्य मृतका को आत्महत्या के लिए उकसाने की कोटि में आता है या नहीं ।

14. उकसाहट क्या है ? **रमेश कुमार** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया है :-

> "उकसाहट का अर्थ प्रेरित करना, आग्रह करना, प्रकोपित करना, उद्दीपित करना या उत्साहित करना है । उकसाहट की अपेक्षाओं का समाधान करने के लिए, यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि शब्द वास्तविक रूप से बोले जाएं या उकसाहट ऐसी हो

---

[1] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 1446.

[2] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 3837.

जिससे कोई बुरा नतीजा निकलता हो । फिर भी, युक्तियुक्त रूप से उकसाहट ऐसी होनी चाहिए जो शब्दों में व्यक्त की गई हो । वर्तमान मामला ऐसा मामला नहीं है जिसमें अभियुक्त ने अपने कृत्य या लोप या निरन्तर किए गए कार्य से ऐसी परिस्थितियों को जन्म दिया हो जिनके परिणामस्वरूप मृतका के पास आत्महत्या करने के सिवाय कोई विकल्प न बचा हो । आत्महत्या का परिणाम सोचे बिना क्रोध में आकर अचानक कहे गए शब्दों को आत्महत्या के लिए उकसाना नहीं कहा जा सकता ।

15. उकसाहट को गठित करने के लिए जो व्यक्ति किसी को उकसाता है, उसे प्रकोपित, उद्दीपित, प्रेरित या उत्साहित घोर आग्रह के साथ करना चाहिए । प्रेरित करने का शाब्दिक अर्थ किसी व्यक्ति को क्रियाशील बनाना है, क्रिया या प्रतिक्रिया के लिए प्रकोपित करना है, किसी व्यक्ति को तब तक चिढ़ाते रहने है जब तक कि वह प्रतिक्रिया न करे । इसी प्रकार, अनुरोध का अर्थ किसी व्यक्ति के समक्ष घोर आग्रह करना है ताकि वह व्यक्ति और अधिक तीव्रता से किसी विशेष दशा में कार्य करे विशेषकर ऐसे व्यक्ति पर बल का प्रयोग किए जाने की स्थिति में । अतः, ऐसा व्यक्ति जो दूसरे व्यक्ति को प्रेरित करता है या उकसाता है, तब यह कहा जाएगा कि पहला व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को साशय प्रकोपित या उत्साहित करता है । जब कोई अभियुक्त अपने कृत्य से या अपने आचरण से ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है कि मृतक के पास आत्महत्या के सिवाए अन्य कोई विकल्प न बचे, तब इसे उकसाना कहा जा सकता है । दूसरे शब्दों में, यह साबित करने के लिए कि अभियुक्त ने किसी व्यक्ति को आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरित किया है, तब यह सिद्ध किया जाना चाहिए :-

(i) अभियुक्त मृतक को शब्दों, कृत्यों या जानबूझकर किए गए लोपों या आचरण जो जानबूझकर किया गया मौन धारण भी हो सकता है, से तब तक चिढ़ाता है जब तक कि मृतक प्रतिक्रिया न कर दे; या अभियुक्त अपने कृत्यों, शब्दों या जानबूझकर किए गए लोपों या आचरण से मृतक पर बल का प्रयोग करता है जिसके परिणामस्वरूप मृतक तेजी के साथ किसी दिशा में बढ़ता है; और

(ii) यह कि अभियुक्त का आशय मृतक को आत्महत्या करने के लिए उपरोक्त रूप में प्रकोपित करना या उत्साहित करना हो । उकसाने के अपराध को गठित करने के लिए आपराधिक मनःस्थिति एक आवश्यक अवयव है । [चित्रेश कुमार चोपड़ा **बनाम** राज्य (उपरोक्त) वाला मामला देखिए]

16. दुष्प्रेरण के अधीन किसी व्यक्ति के उकसाने संबंधी मानसिक प्रक्रिया सम्मिलित है या किसी व्यक्ति से साशय कोई कार्य कराया जाता है । अभियुक्त द्वारा किसी व्यक्ति को उकसाने का सकारात्मक कार्य या आत्महत्या करने में सहायक बनना अपेक्षित है । इसके अधीन सक्रिय कृत्य या प्रत्यक्ष कृत्य भी अपेक्षित है जिसके परिणामस्वरूप मृतक किसी विकल्प के न रहते हुए आत्महत्या कर लेता है और यह कृत्य मृतक को साशय ऐसी स्थिति में लाने के लिए किया गया हो कि वह आत्महत्या कर ले । इस अपराध के गठित किए जाने के लिए अभियुक्त द्वारा आत्महत्या कारित किए जाने से संबंधित उद्दीपन का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कृत्य किया जाना चाहिए । जिस व्यक्ति के संबंध में कहा गया है कि उसने आत्महत्या का दुष्प्रेरण किया है, उसके द्वारा मृतक को उकसाया गया हो या ऐसा कोई कृत्य किया गया हो जिससे आत्महत्या कारित किए जाने को सुकर बना हो । (**मोहन** बनाम **राज्य**[1], **गंगूला मोहन रेड्डी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[2] और **अमलेन्दु पाल** उर्फ **झन्तू** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[3] वाले मामले देखिए)

17. उकसाहट द्वारा किया गया दुष्प्रेरण का अपराध उस व्यक्ति के आशय पर निर्भर करता है जिसने दुष्प्रेरित किया है न कि उस व्यक्ति द्वारा की गई प्रतिक्रिया पर निर्भर करे जिसे दुष्प्रेरित किया गया है । वास्तव में, उकसाहट का अर्थ किसी मामले विशेष की परिस्थितियों से लगाया जाता है । इस संबंध में कोई एक सूत्र अधिकथित नहीं किया जा सकता जिससे यह पता लगाया जा सके कि किसी मामले विशेष में

---

[1] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1238.

[2] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 327.

[3] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 512.

इस प्रकार उकसाया गया है जिससे कोई व्यक्ति आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाए । किसी एक मामले में ऐसा हो सकता है कि उकसाने से संबंधित कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य न हो जिसका सीधा संबंध आत्महत्या से हो । अतः, ऐसे मामले में परिस्थितियों से निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए और यह तय किया जाना चाहिए कि क्या ऐसी परिस्थितियां थीं जिनसे वास्तव में ऐसी स्थितियां पैदा हुई कि कोई व्यक्ति पूर्णतया हताश हो जाए और आत्महत्या कर ले (**प्रवीण प्रधान** बनाम **उत्तरांचल राज्य**[1] वाला मामला देखिए) ।

18. यह सुस्थापित है कि दंड संहिता की धारा 306 के अधीन अभियोजन के मामले में, अभियुक्त के अभिकथित कृत्य और आहत द्वारा आत्महत्या किए जाने के बीच संबंध होना चाहिए । दुष्प्रेरण करने वाले अभियुक्त के अभिकथित कृत्यों का अनुमानित परिणाम आत्महत्या होना चाहिए । अभियुक्त के उन कृत्यों और शब्दों में जो दुष्प्रेरण गठित करने के लिए आवश्यक हैं, इतना बल और प्रभाव होना चाहिए कि सामान्य परिस्थितियों में कोई आहत आत्महत्या कर ले ।

19. वर्तमान मामले के तथ्यों पर ऊपर उल्लिखित सिद्धांतों के आधार पर विचार किया जाना चाहिए । केस डायरी में इंडियन बैंक्स एसोसिएशन द्वारा जारी शिक्षा-ऋण की मंजूरी से संबंधित सन्नियमों की एक प्रति अन्तर्विष्ट है जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा निचले न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है । इससे यह दर्शित होता है कि 4,00,000/- रुपए तक शिक्षा-ऋण मंजूर करने के लिए छात्र के माता-पिता की सहबाध्यता सुनिश्चित की जाए । यह भी कथन किया गया है कि ऋण दस्तावेज छात्र और माता-पिता/संरक्षक दोनों के द्वारा संयुक्त-ऋणी के रूप में निष्पादित किए जाने चाहिए । सन्नियमों के अधीन यह भी उपबंध किया गया है कि शिक्षा-ऋण मंजूर किए जाने के लिए पूर्व-शर्त के रूप में यह आवश्यक नहीं है कि 'बकाया-मुक्त' प्रमाण-पत्र प्रस्तुत किया जाए किन्तु बैंक इस संबंध में घोषणा-पत्र/शपथपत्र मान सकते हैं कि उस आवेदक ने अन्य किसी बैंक से ऋण नहीं लिया हुआ है ।

---

[1] (2012) 9 एस. सी. सी. 734 = 2012 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5372.

20. वर्ष 2010 और 2011 में मृतका द्वारा प्रस्तुत किए गए ऋण आवेदनों का तारीख 16 मार्च, 2012 को खारिज किया जाना, चाहे कारण कुछ भी रहा हो, आवेदकों द्वारा किया गया उकसाहट का ऐसा कृत्य नहीं कहा जा सकता जिसके कारण मृतका ने अप्रैल, 2012 में आत्महत्या की । मृतका द्वारा वर्ष 2010 और 2011 में प्रस्तुत किए गए आवेदनों के तारीख 16 मार्च, 2012 को आवेदकों द्वारा खारिज किए जाने और इतने लम्बे समय के बाद मृतका द्वारा आत्महत्या किए जाने के बीच कोई भी सीधा संबंध नहीं है । आवेदकों द्वारा अभिकथित रूप से कारित किए गए कृत्य और आहत द्वारा की गई आत्महत्या के बीच कोई भी समय निकटता नहीं है ।

21. **मदन मोहन सिंह** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाले मामले में अभियुक्त द्वारा दुष्प्रेरण के अभिकथित कृत्य तारीख 15 अक्तूबर, 2007 और तारीख 19 अक्तूबर, 2007 के बीच कारित किए गए थे । उस मामले में आहत ने तारीख 21 फरवरी, 2008 और तारीख 23 फरवरी, 2008 के बीच आत्महत्या की थी । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि आत्महत्या और अभिकथित दुष्प्रेरण के कृत्य के बीच सन्निकटता नहीं है ।

22. **अमलेन्दु पाल** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अभियुक्त द्वारा ऐसा सकारात्मक कार्य किया गया है जिसका घटना के समय के साथ सामीप्य है और इसी कार्य के परिणामस्वरूप आत्महत्या की गई है ।

23. **संजू** उर्फ **संजय सिंह सेंगर** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में दुष्प्रेरण के अभिकथित कृत्य और आहत द्वारा की गई आत्महत्या के कृत्य के बीच समय की सन्निकटता पर बल दिया गया है जो निम्न प्रकार है :-

> "द्वितीयतः, अभिकथित अपशब्द तारीख 25 जुलाई, 1998 को मृतक को झगड़े के दौरान बोले गए बताए गए हैं । मृतक

---

[1] (2010) 8 एस. सी. सी. 628 = 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5101.

[2] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 1998.

तारीख 27 जुलाई, 1998 को फांसी पर लटका हुआ पाया गया । यह मानते हुए कि मृतक ने उन शब्दों को गंभीरता से लिया, उसके पास इस दौरान सोचने और प्रतिक्रिया करने के लिए पर्याप्त समय था और इसीलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी द्वारा तारीख 25 जुलाई, 1998 को प्रयोग की गई अभद्र भाषा के कारण मृतक ने आत्महत्या की । तारीख 27 जुलाई, 1998 को मृतक द्वारा की गई आत्महत्या तारीख 25 जुलाई, 1998 को अपीलार्थी द्वारा प्रयोग की गई अभद्र भाषा के सन्निकट नहीं है । इस तथ्य से कि मृतक ने तारीख 27 जुलाई, 1998 को आत्महत्या की, स्पष्ट रूप से यह इंगित होता है कि यह घटना तारीख 25 जुलाई, 1998 को झगड़े का सीधा परिणाम नहीं है जिसके दौरान अपीलार्थी ने अभिकथित रूप से अभद्र भाषा का प्रयोग किया था और मृतक से कहा था कि 'जाओ और मरो' । निचले न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया है ।"

24. अभियुक्त द्वारा किए गए दुष्प्रेरण के अभिकथित कृत्य और आहत के (आत्महत्या) के कृत्य के बीच समय की सन्निकटता परमावश्यक है । यदि अभियुक्त द्वारा किए गए दुष्प्रेरण के अभिकथित अपराध के लम्बे समय के बाद आहत ने आत्महत्या की है तब यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि अभियुक्त के कृत्य और आहत द्वारा की गई प्रतिक्रिया के बीच कोई संबंध है । अभियुक्त के कृत्य और आहत द्वारा की गई आत्महत्या के बीच लम्बे समयान्तराल से यह निष्कर्ष नकारात्मक हो जाता है कि परिस्थितियां ऐसी हो गई थीं कि आहत के पास अपनी जीवन-लीला समाप्त करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं बचा था, इसलिए उसने आत्महत्या कर ली ।

25. उपरोक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि वर्ष 2010 और 2011 में मृतक द्वारा प्रस्तुत किए गए ऋण-आवेदनों का तारीख 16 मार्च, 2012 को आवेदकों द्वारा खारिज किया जाना दुष्प्रेरण के ऐसे कृत्य की कोटि में आता है जिसके परिणामस्वरूप आहत ने अप्रैल, 2012 में आत्महत्या कर ली ।

26. द्वितीय आवेदक सुसंगत समय पर कोट्टयम स्थित बैंक में

उप-प्रबंधक के पद पर कार्यरत था । तारीख 16 मार्च, 2012 को मृतका द्वारा शिक्षा-ऋण के लिए प्रस्तुत किए गए आवेदन के खारिज किए जाने में द्वितीय आवेदक की विशिष्ट भूमिका नहीं है और न ही तारीख 14 अप्रैल, 2012 को मृतका द्वारा प्रस्तुत किए गए ऋण आवेदन पर कार्यवाही करने में उसकी कोई भूमिका है ।

27. प्रथम आवेदक के विरुद्ध यह अभिकथन किया गया है कि तारीख 14 अप्रैल, 2012 को मृतका द्वारा प्रस्तुत शिक्षा-ऋण संबंधी आवेदन पर उसने कोई भी निर्णय नहीं लिया था । अभियोजन पक्ष ने निचले न्यायालय के समक्ष, बैंक द्वारा शिक्षा-ऋण मंजूर किए जाने संबंधी सन्नियमों की एक प्रति प्रस्तुत की । इन सन्नियमों के अनुसार भी ऋण आवेदन का निपटारा मात्र 15 दिन के भीतर किया जाना चाहिए । मृतका ने तारीख 17 अप्रैल, 2012 को अर्थात् तारीख 14 अप्रैल, 2012 को उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए शिक्षा-ऋण के आवेदन के नतीजे की प्रतीक्षा किए बिना कीटनाशक पदार्थ खा लिया था । ऐसी परिस्थितियों में यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि तारीख 17 अप्रैल, 2012 तक उस ऋण आवेदन पर कार्यवाही न करने में प्रथम आवेदक ने कोई आपराधिक लोप या उपेक्षा कारित की है जो मृतका ने तारीख 14 अप्रैल, 2012 को प्रस्तुत किया था और यह कि ऐसे लोप या ऐसी उपेक्षा के कारण मृतका ने ऐसा कृत्य कारित किया जिसके परिणामस्वरूप तारीख 30 अप्रैल, 2012 को उसकी मृत्यु हो गई ।

28. प्रथम आवेदक के विरुद्ध किया गया सबसे गंभीर अभिकथन उस घटना से संबंधित है जो अभिकथित रूप से तारीख 16 अप्रैल, 2012 को घटित हुई थी अर्थात् जब मृतका प्रथम आवेदक से मिली थी और मृतका ने उससे कहा था कि अगर ऋण मंजूर नहीं किया गया तब उसके पास मर जाने के सिवाय कोई विकल्प न बचेगा । यह अभिकथन किया गया है कि इसके पश्चात् प्रथम आवेदक ने मृतका से कहा था कि जाओ और आत्महत्या कर लो ।

29. आवेदकों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह प्रतिवाद किया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा ऐसी कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है जिससे यह साबित हो सके कि प्रथम आवेदक ने

मृतका से चले जाने और आत्महत्या करने को कहा था । इस दलील में कोई सार नहीं है । मृतका के पिता ने पुलिस को यह कथन दिया है कि तारीख 28 अप्रैल, 2012 को उसकी पुत्री को अस्पताल में आई. सी. यू. से वार्ड में लाया गया था और तब मृतका ने उसे उस घटना के बारे में बताया था जो उस समय घटित हुई थी जब मृतका प्रथम आवेदक से तारीख 16 अप्रैल, 2012 को मिली थी । मृतका के पिता द्वारा दिए गए कथन के अनुसार मृतका ने अपने पिता को यह बताया था कि वह प्रथम आवेदक से तारीख 16 अप्रैल, 2012 को मिली थी और मृतका ने प्रथम आवेदक से यह कहा था कि यदि ऋण मंजूर नहीं किया गया तो उसके पास मरने के सिवाय कोई अन्य विकल्प नहीं बचेगा और इसके पश्चात् प्रथम आवेदक ने उसे चले जाने और आत्महत्या करने को कहा ।

30. मृत्युकालिक कथन मौखिक हो सकता है और वह किसी नातेदार या किसी प्राइवेट व्यक्ति को दिया जा सकता है (**परवीन अली** बनाम **असम राज्य**[1], **श्रीनिवासुलू** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[2], **प्रकाश** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[3] और **अभिलाष** बनाम **केरल राज्य**[4] वाले मामले देखिए) ।

31. श्रुति की मृत्यु तारीख 30 अप्रैल, 2012 को हुई । तारीख 28 अप्रैल, 2012 को उसके पिता द्वारा पुलिस को दिए गए कथन में उसने तारीख 16 अप्रैल, 2012 को घटित हुई घटना के संबंध में उस समय उल्लेख किया जब मृतका ऋण आवेदन के संबंध में प्रथम आवेदक से मिली थी । तारीख 28 अप्रैल, 2012 को मृतका द्वारा उसके पिता को अभिकथित रूप से दिया गया कथन, मृत्युकालिक कथन की कोटि में आता है या नहीं और यदि आता है, तब क्या ऐसा कथन विश्वसनीय होगा या नहीं, ऐसे प्रश्न नहीं हैं जो इस आवेदन में इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए जाएं । यह कहना पर्याप्त होगा कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री से यह साबित होता है कि मृतका प्रथम

---

[1] ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 542.

[2] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 2780.

[3] (1992) 4 एस. सी. सी. 225.

[4] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 65.

आवेदक से तारीख 16 अप्रैल, 2012 को मिली थी और इसके पश्चात् प्रथम आवेदक ने मृतका से चले जाने और आत्महत्या कर लेने को कहा ।

32. किन्तु महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या प्रथम आवेदक का यह कृत्य सत्य मान लिया जाए कि उससे यह कहना कि जाओ और आत्महत्या कर लो, उकसाने और उसके परिणामस्वरूप आत्महत्या के दुष्प्रेरण की कोटि में आएगा या नहीं ।

33. **रमेश कुमार** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि आक्रोश में आकर या भावुक होकर वास्तव में घटित हुई घटना के आशय के बिना कहे गए शब्दों को उकसाहट नहीं कहा जा सकता ।

34. **स्वामी प्रहलादास** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 306 के अधीन अपराध के लिए इस आधार पर आरोपित किया गया कि झगड़े के दौरान उसने मृतक से कहा था कि 'जाओ और मरो' । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त द्वारा मृतक से मात्र यह कह देना कि 'जाओ और मरो', प्रथमदृष्ट्या मृतक को आत्महत्या करने हेतु उकसाने के लिए पर्याप्त नहीं है । इस संबंध में निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "प्रथमतः, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर प्रथमदृष्ट्या इस निष्कर्ष पर पहुंचना कठिन है कि अपीलार्थी द्वारा जो कुछ कहा गया था वह मृतक को आत्महत्या करने हेतु उकसाने के लिए पर्याप्त था । ऐसे शब्द साधारण प्रकृति के होते हैं जो झगड़ा करने वालों के बीच आवेग की तीव्रता में बोले जाते हैं । इन शब्दों के बोले जाने के पश्चात् किसी भी अप्रिय घटना के घटित होने की प्रत्याशा नहीं की जा सकती । इस उपधारणा के आधार पर कि पूरे घटनाक्रम के दौरान ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया था, उक्त कृत्य से आपराधिक मनःस्थिति प्रतिबिम्बित नहीं होती है । इसके अतिरिक्त, मृतक के पास उस कार्य को करने के पश्चात् होने

---

[1] (1995) 3 (सप्ली.) एस. सी. सी. 438 = ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 94.

वाले फायदे और नुकसान का आकलन करने हेतु पर्याप्त समय था । यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी द्वारा बोले गए शब्दों का सीधा परिणाम मृतक द्वारा की गई हत्या थी ।"

35. **संजय सिंह सेंगर** (उपरोक्त) वाले मामले में निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :-

"यदि हम अभियोजन का यह पक्षकथन स्वीकार कर लें कि अपीलार्थी ने मृतक से कहा था 'जाओ और मरो', तब भी इस बात से 'उकसाहट' का संघटक गठित नहीं होता है । ... यह सामान्य ज्ञान की बात है कि झगड़े में या अचानक प्रकोपन के दौरान बोले गए शब्दों को आपराधिक मनःस्थिति के साथ बोले गए शब्द नहीं माना जा सकता । ऐसा तो आवेग की तीव्रता में और भावुक होकर ही किया जाता है ।"

36. **पवन कुमार** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया है :-

"यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि अभियुक्त द्वारा घटना के सन्निकट किसी सकारात्मक कार्य के बिना तंग किए जाने का मात्र ऐसा अभिकथन किया गया हो जिसके परिणामस्वरूप कोई व्यक्ति आत्महत्या कर ले, तब ऐसे अभिकथन के आधार पर दंड संहिता की धारा 306 के अधीन की गई दोषसिद्धि कायम नहीं रखी जा सकती । सामान्य बातों के अनुक्रम में किया गया अनौपचारिक टिप्पण उकसाहट की कोटि में नहीं आएगा । डांटना या फटकारना दुष्प्रेरण का स्थान नहीं ले सकता । अभियुक्त द्वारा ऐसा सकारात्मक कार्य किया जाना चाहिए जिससे ऐसी स्थिति पैदा हो जाए कि आहत अपने जीवन का अन्त कर बैठे ।"

37. यदि प्रथम आवेदक के विरुद्ध किए गए इस अभिकथन को उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त की गई निर्णय-विधि की कसौटी पर परखा जाए कि 'जाओ और आत्महत्या कर लो', तब यह निष्कर्ष निकलता है कि उसके द्वारा इन शब्दों का बोला जाना, आत्महत्या के

---

[1] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 2459.

लिए उकसाने वाले कृत्य की कोटि में नहीं आता है ।

38. यह उल्लेखनीय है कि अभियोजन पक्षकथन के अनुसार भी जब मृतका ने प्रथम आवेदक से कहा था कि यदि उसे ऋण मंजूर नहीं किया गया तो उसके पास मरने के सिवाय कोई विकल्प नहीं होगा, तब प्रथम आवेदक ने मृतका से चले जाने और ऐसे करने के लिए कहा था । अभियोजन पक्षकथन के अनुसार भी मर जाने से संबंधित बात भी पहली बार प्रथम आवेदक द्वारा नहीं कही गई थी । प्रथम आवेदक ने मृतका को जिस प्रकार, जिस स्थिति में, आक्रोश में आकर, भावुक होकर जिस प्रकार अचानक जवाब दिया है उससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि उसने मृतका को आत्महत्या करने के लिए उकसाया है ।

39. इस संदर्भ में, अन्य कतिपय परिस्थितियों पर भी विचार किया जाना चाहिए । अभियोजन पक्ष ने परमेश्वरम (सी. डब्ल्यू. 19) के कथन का अवलंब आवेदकों के विरुद्ध मामला साबित करने के लिए लिया । इस साक्षी का कथन दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 164 के अधीन अभिलिखित किया गया है । इस कथन में इस साक्षी ने यह उल्लेख किया है कि शिक्षा-ऋण मंजूर किए जाने की कार्यवाही मुंबई स्थित बैंक के मुख्यालय द्वारा की जा रही है और यह कि परिपाटी के अनुसार सत्यापन के पश्चात् ऋण के लिए किए गए आवेदनों को मुंबई मुख्यालय भेजा जाता है । यदि ऐसा है तब यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि शिक्षा-ऋण के लिए किए गए आवेदनों को मंजूर करने या खारिज करने में आवेदकों की कोई भूमिका है या उन्हें कोई प्राधिकार प्राप्त है ।

40. अन्तिम रिपोर्ट के साथ अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री से यह दर्शित होता है कि मृतका ने आंध्र प्रदेश के एक विद्यालय में प्रवेश लिया था और यह कि उसने अप्रैल, 2012 तक बी. एस-सी. नर्सिंग के पाठ्यक्रम का एक वर्ष भी सफलतापूर्वक पूरा कर लिया था और वह केरल वापस आ गई थी । इस पाठ्यक्रम के चार वर्ष का शुल्क 3,60,000/- रुपए था अर्थात् 90,000/- रुपए प्रतिवर्ष । मृतका के पिता द्वारा पुलिस को दिए गए कथन से यह उपदर्शित होता है कि 50,000/- रुपए की रकम शुल्क के रूप में विद्यालय में जमा की गई थी और 40,000/- रुपए बकाया थे । मृतका शुल्क के बकाया का संदाय

किए बिना विद्यालय में अपनी पढ़ाई जारी नहीं रख सकती थी । मृतका ने प्रवेश के दौरान जो अपने प्रमाण पत्र विद्यालय में जमा किए थे वे उसे बकाया राशि का भुगतान किए जाने पर वापस मिल सकते थे । इन परिस्थितियों से यह उपदर्शित होता है कि मृतक हताश हो गई थी । उसे धन की बहुत अधिक आवश्यकता थी । किन्तु इस आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि आवेदकों ने मृतका द्वारा प्रस्तुत किए गए ऋण आवेदन के दो दिन बाद ऋण मंजूर न करके उसे हत्या करने के लिए उकसाया था ।

41. आत्महत्या 'एक प्रकार के भय' का परिणाम है । यह ऐसी निराशा है जिससे अन्तरात्मा कुप्रभावित होती है और आत्म-शक्ति कम हो जाती है और मनुष्य अपने दायित्व को भूल जाता है । इस कारण आत्म-विनाश के बारे में सोचना कि कुछ अप्रिय, दुःसह या असहनीय कारित हुआ है, कायरतापूर्ण व्यवहार माना जाना चाहिए जिसके दौरान तत्काल दुर्घटना हो जाने का भय रहता है या इसे स्वयं की सोच का परिणाम कहा जा सकता है (**केरल राज्य** बनाम **उन्नीकृष्णन**[1] वाला मामला देखिए) ।

42. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, मेरी यह सुविचारित राय है कि अभियोजन पक्ष ने आवेदकों के विरुद्ध प्रथमदृष्टया यह साबित नहीं किया है कि उन्होंने दंड संहिता की धारा 306 के अधीन दंडनीय अपराध कारित किया है और आवेदकों के विरुद्ध कार्यवाही का जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करना होगा ।

43. परिणामतः, आवेदन मंजूर किया जाता है । आवेदकों के विरुद्ध सेशन न्यायालय, कोट्टयम के समक्ष लंबित सभी कार्यवाहियां जो अन्तिम रिपोर्ट (उपाबंध-क) पर आधारित हैं, एतद्द्वारा अभिखंडित की जाती हैं ।

आवेदन मंजूर किया गया ।

अस.

---

[1] ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 3351.

बांधन

बनाम

छत्तीसगढ़ राज्य

(2019 की दांडिक अपील सं. 560)

तारीख 14 मई, 2019

न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार मिश्रा और श्रीमती रजनी दूबे

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – सबूत – अभियुक्त व्यक्ति के बारे में यह अभिकथन किया जाना कि उसके द्वारा बांस की छड़ और स्वाल से मृतक की हत्या की – यदि शवपरीक्षण रिपोर्ट से यह निष्कर्ष निकाला गया कि सिर की क्षति के कारण मृत्यु हुई तथा मृत्यु की प्रकृति मानवघाती है तथा अभियुक्त से बांस की छड़ और स्वाल की बरामदगी हुई तथा न्यायालयिक प्रयोगशाला रिपोर्ट के अनुसार बांस की छड़ रक्त-रंजित नहीं पाई गई और आयुध के रूप में स्वाल का प्रयोग नहीं किया गया – मामले में न्यायिकेतर या अंतिम बार एक साथ देखे जाने का कोई साक्ष्य नहीं है तो अभियुक्त दोषमुक्त होने का हकदार है ।

मर्ग सूचना (प्रदर्श पी. 7) मृतका के पुत्र दिल प्रसाद (अभि. सा. 2) द्वारा दी गई, तारीख 3 सितंबर, 2017 को लगभग 11.15 बजे संबंधित पुलिस थाने द्वारा सूचना अभिलिखित की गई थी । मर्ग सूचना अभिलेख से यह प्रकट है कि अपीलार्थी ने दिल प्रसाद को यह सूचना दी कि उसके पिता देवगढ़ भालूपानी हिलरोड के नजदीक मृत पड़े हुए हैं । इस सूचना पर दिल प्रसाद, ओमप्रकाश और अपीलार्थी उस स्थान पर गए और उन्होंने देखा कि मृतक बालाशाही के सिर, नाक, बाएं अधोहनु क्षेत्र पर गंभीर क्षतियां कारित हुई थीं । शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श पी. 3/क) जिसे तारीख 24 सितंबर, 2017 को किया गया था, मृत्यु का कारण सिर की क्षति होना पाया गया था और मृत्यु की प्रकृति मानवघाती थी ।

पूछताछ के दौरान अपीलार्थी का संगम ज्ञापन कथन प्रदर्श पी. 12 के माध्यम से अभिलिखित किया गया था जिसके अनुसरण में एक बांस की छड़ और स्वाल तारीख 24 सितंबर, 2017 को अपीलार्थी के कब्जे से बरामद किया गया था । इसके पश्चात् प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उसी दिन दर्ज की गई थी (देखिए प्रदर्श पी. 15) । अन्वेषण के दौरान तेजन (अभि. सा. 9) ने तारीख 4 अक्तूबर, 2017 को पुलिस को यह बताया था कि उसने बांस की छड़ से मृतक पर हमला करते हुए अपीलार्थी को देखा था । इस प्रकार, अभियोजन पक्ष ने तेजराम पाइकारा (प्रत्यक्षदर्शी साक्षी) के बल पर आरोप पत्र फाइल किया और संगम ज्ञापन की प्रकृति के रूप में पारिस्थितिक साक्ष्य और बांस की छड़ की बरामदगी के बारे में न्यायालयिक प्रयोगशाला रिपोर्ट (प्रदर्श पी. 19) से समर्थन मिला है । अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा दोषसिद्धि व दंडादेश के विरुद्ध अपील फाइल की गई । तद्नुसार आदेश करते हुए,

अभिनिर्धारित – स्वीकृततः, न्यायिकेतर संस्वीकृति या अंतिम बार एक साथ देखे जाने का कोई साक्ष्य नहीं है । अभियोजन मामला प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अभि. सा. 9, संगम ज्ञापन कथन और अभिगृहीत वस्तु पर आधारित है । तथापि, अभि. सा. 9 तेजन पक्षद्रोही हो गया और उसने प्रतिपरीक्षा के दौरान अभियोजन पक्षकथन का भी समर्थन नहीं किया है । जहां तक बांस की छड़ और स्वाल के अभिग्रहण का संबंध है न्यायालयिक प्रयोगशाला रिपोर्ट से बांस की छड़ (वस्तु डी) पर रक्त के धब्बे सिद्ध नहीं किए गए हैं । अपीलार्थी से बरामद किया गया स्वाल उसका स्वयं का स्वाल है और उसे आयुध के रूप में प्रयोग नहीं किया गया है । (पैरा 7 और 8)

विधि में यह सुस्थिर है कि अभियुक्त केवल संदेह के आधार पर दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता । हत्या के मामले को साबित करने के लिए साबित किए जाने की सफलता को प्राप्त करने के लिए अभियोजन पक्ष अकाट्य और विश्वसनीय साक्ष्य पेश करे जिससे केवल एक मत प्रकट हो अर्थात् अभियुक्तों द्वारा अपराध किया गया न कि अन्य किसी अन्य व्यक्ति द्वारा । इस बात में सच्चाई है कि ऐसे मामले में जहां अभियोजन मामला प्रारंभिक तौर पर प्रत्यक्षदर्शी साक्षी पर आधारित है

और बाद में प्रत्यक्षदर्शी साक्षी पक्षद्रोही हो जाता है तो भी दोषसिद्धि पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित हो सकती है । परन्तु वर्तमान मामले में अपीलार्थी के विरुद्ध कोई ऐसी परिस्थिति को सिद्ध किया जाना नहीं पाया गया है जो अपीलार्थी को अपराध किए जाने से संबंधित करता हो । न्यायालय की यह विचारित राय यह है कि अपीलार्थी के विरुद्ध अपराध कारित किए जाने के संबंध में उसे संबंधित करने का पूर्णतया कोई साक्ष्य नहीं है, इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि अपास्त किए जाने योग्य है । अपीलार्थी जेल में है । जब तक कि उसे किसी अन्य मामले में निरुद्ध किया जाना अपेक्षित न हो तो उसे तत्काल निर्मुक्त किया जाना चाहिए और उसे 25,000/- रुपए की राशि का वैयक्तिक बंधपत्र और साथ में उसी राशि का एक प्रतिभू विचारण न्यायालय के समाधान के लिए देना होगा । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437क के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए आज से छह मास की अवधि के लिए प्रतिभू और वैयक्तिक बंधपत्र प्रवर्तन में रहेंगे । अपीलार्थी उच्चतर न्यायालय के समक्ष हाजिर होगा जब भी उससे अपेक्षा की जाए । (पैरा 10 और 11)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2019 की दांडिक अपील सं. 560.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 374 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री किशोर नारायण

प्रत्यर्थी की ओर से श्री ए. के. मिश्रा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – यह अपील अंतरिम आवेदन सं. 1 की सुनवाई के लिए आज डाक द्वारा भेजी गई, जिसमें दंड के निलंबन के लिए तथा जमानत की मंजूरी के लिए भी आवेदन भेजा गया था तथापि, पक्षकारों के काउंसेलों की सहमति से हम अन्तिम रूप से अपील को सुनने के लिए अग्रसर होते हैं ।

2. अपीलार्थी दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध कारित

करने के लिए दोषसिद्ध किया गया साथ ही आजीवन कारावास का दंडादेश और 500/- रुपए जुर्माने का संदाय करने, जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर छह मास का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया गया ।

3. यह मर्ग सूचना (प्रदर्श पी. 7) मृतका का पुत्र दिल प्रसाद (अभि. सा. 2) द्वारा दी गई, तारीख 3 सितंबर, 2017 को लगभग 11.15 बजे संबंधित पुलिस थाने द्वारा सूचना अभिलिखित की गई थी । मर्ग सूचना अभिलेख से यह प्रकट है कि अपीलार्थी ने दिल प्रसाद को यह सूचना दी कि उसके पिता देवगढ़ भालूपानी हिलरोड के नजदीक मृत पड़े हुए हैं । इस सूचना पर दिल प्रसाद, ओमप्रकाश और अपीलार्थी उस स्थान पर गए और उन्होंने देखा कि मृतक बालाशाही के सिर, नाक, बाएं अधोहनु क्षेत्र पर गंभीर क्षतियां कारित हुई थीं ।

4. शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श पी. 3/क) जिसे तारीख 24 सितंबर, 2017 को किया गया था, मृत्यु का कारण सिर की क्षति होना पाया गया था और मृत्यु की प्रकृति मानवघाती थी ।

5. पूछताछ के दौरान अपीलार्थी का संगम ज्ञापन कथन प्रदर्श पी. 12 के माध्यम से अभिलिखित किया गया था जिसके अनुसरण में एक बांस की छड़ और स्वाल तारीख 24 सितंबर, 2017 को अपीलार्थी के कब्जे से बरामद किया गया था । इसके पश्चात् प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उसी दिन दर्ज की गई थी (देखिए प्रदर्श पी. 15) । अन्वेषण के दौरान तेजन (अभि. सा. 9) ने तारीख 4 अक्तूबर, 2017 को पुलिस को यह बताया था कि उसने बांस की छड़ से मृतक पर हमला करते हुए अपीलार्थी को देखा था ।

6. इस प्रकार, अभियोजन पक्ष ने तेजराम पाइकारा (प्रत्यक्षदर्शी साक्षी) के बल पर आरोप पत्र फाइल किया और संगम ज्ञापन की प्रकृति के रूप में पारिस्थितिक साक्ष्य और बांस की छड़ की बरामदगी के बारे में न्यायालयिक प्रयोगशाला रिपोर्ट (प्रदर्श पी. 19) से समर्थन मिला है ।

7. स्वीकृततः, न्यायिकेतर संस्वीकृति या अंतिम बार एक साथ देखे जाने का कोई साक्ष्य नहीं है । अभियोजन मामला प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अभि. सा. 9, संगम ज्ञापन कथन और अभिगृहीत वस्तु पर आधारित है । तथापि, अभि. सा. 9 तेजन पक्षद्रोही हो गया और उसने प्रतिपरीक्षा के दौरान अभियोजन पक्षकथन का भी समर्थन नहीं किया है ।

8. जहां तक बांस की छड़ और स्वाल के अभिग्रहण का संबंध है न्यायालयिक प्रयोगशाला रिपोर्ट से बांस की छड़ (वस्तु डी) पर रक्त के धब्बे सिद्ध नहीं किए गए हैं । अपीलार्थी से बरामद किया गया स्वाल उसका स्वयं का स्वाल है और उसे आयुध के रूप में प्रयोग नहीं किया गया है ।

9. अन्य साक्षियों में, मृतक का पुत्र (अभि. सा. 2) के परिसाक्ष्य इस बारे में अत्यधिक प्रकाश नहीं डालता है कि किसने अपराध किया । इसी तरह अन्य साक्षी अर्थात् अभि. सा. 3 ओम प्रकाश, अभि. सा. 4 रुद्र सागर, अभि. सा. 6 के. पी. गुप्ता, अभि. सा. 7 रमाकांत राजवाड़े और अभि. सा. 8, शिवपूजन तिवारी ने कुछ भी कथन नहीं किया है जिससे अपीलार्थी को अपराध में फंसाए जाने वाले तथ्य के साथ उसे संबंधित किया जा सके ।

10. विधि में यह सुस्थिर है कि अभियुक्त केवल संदेह के आधार पर दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता । हत्या के मामले को साबित करने के लिए साबित किए जाने की सफलता को प्राप्त करने के लिए अभियोजन पक्ष अकाट्य और विश्वसनीय साक्ष्य पेश करे जिससे केवल एक मत प्रकट हो अर्थात् अभियुक्तों द्वारा अपराध किया गया न कि अन्य किसी अन्य व्यक्ति द्वारा । इस बात में सच्चाई है कि ऐसे मामले में जहां अभियोजन मामला प्रारंभिक तौर पर प्रत्यक्षदर्शी साक्षी पर आधारित है और बाद में प्रत्यक्षदर्शी साक्षी पक्षद्रोही हो जाता है तो भी दोषसिद्धि पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित हो सकती है । परन्तु वर्तमान मामले में अपीलार्थी के विरुद्ध कोई ऐसी परिस्थिति को सिद्ध

किया जाना नहीं पाया गया है जो अपीलार्थी को अपराध किए जाने से संबंधित करता हो ।

11. हमारी विचारित राय यह है कि अपीलार्थी के विरुद्ध अपराध कारित किए जाने के संबंध में उसे संबंधित करने का पूर्णतया कोई साक्ष्य नहीं है, इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि अपास्त किए जाने योग्य है । अपीलार्थी जेल में है । जब तक कि उसे किसी अन्य मामले में निरुद्ध किया जाना अपेक्षित न हो तो उसे तत्काल निर्मुक्त किया जाना चाहिए और उसे 25,000/- रुपए की राशि का वैयक्तिक बंधपत्र और साथ में उसी राशि का एक प्रतिभू विचारण न्यायालय के समाधान के लिए देना होगा । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437क के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए आज से छह मास की अवधि के लिए प्रतिभू और वैयक्तिक बंधपत्र प्रवर्तन में रहेंगे । अपीलार्थी उच्चतर न्यायालय के समक्ष हाजिर होगा जब भी उससे अपेक्षा की जाए ।

तद्नुसार आदेश किया गया ।

आर्य

श्रीनाथ

बनाम

राज्य

(2003 की दांडिक अपील सं. 430)

तारीख 12 अप्रैल, 2019

न्यायमूर्ति (सुश्री) हिमा कोहली और न्यायमूर्ति मनोज कुमार ओहरी

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 32 – मृत्युकालिक कथन – ग्राहयता – ऋण की अदायगी न किए जाने को लेकर अपीलार्थी द्वारा अभिकथित रूप से हत्यात्मक हमला किया जाना – मृतका द्वारा अपने पति की उपस्थिति में अपने पिता को अपनी मृत्यु के कुछ पूर्व मृत्यु से संबंधित कथन किया गया है, ऐसा कथन धारा 32 के अधीन मृत्युकालिक कथन की कोटि में आएगा ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 293 – सरकारी वैज्ञानिक विशेषज्ञों की रिपोर्ट – चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र और शवपरीक्षण रिपोर्ट में क्षतियों की संख्या में अन्तर – चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र मात्र प्राथमिक चिकित्सा परीक्षा को दर्शाता है जबकि शवपरीक्षण रिपोर्ट विस्तार से की गई परीक्षा है, अतः बाद में की गई शव परीक्षा को पूर्ववर्ती चिकित्सा परीक्षा पर वरीयता दी जाएगी ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32] – हत्या – साक्ष्य का मूल्यांकन – अभियुक्त द्वारा मृतका पर छुरे से वार किया जाना – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य की शवपरीक्षण और न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट से संपुष्टि – अपराध में प्रयोग किए गए आयुध की बरामदगी – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य की संपुष्टि शवपरीक्षण रिपोर्ट और न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट से होती है और साथ ही साक्षी द्वारा आयुध की बरामदगी भी साबित हुई है जिसकी बनावट मृतका को कारित क्षतियों से मेल खाती

है, अतः अपराध कारित करने संबंधी अपीलार्थी का हेतु साबित होता है और उसकी दोषसिद्धि में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

अभिलेख के अनुसार मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि राम कृपाल (अभि. सा. 1) ने तारीख 24 मार्च, 1997 को अपराह्न लगभग 1.15 बजे अपना कथन (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए) देकर शिकायत दर्ज कराई और वह रेस कोर्स क्लब स्थित अपनी झुग्गी पर मौजूद था और टेलीविजन देख रहा था और उसकी पत्नी बिमला झुग्गी से बाहर गई हुई थी, तभी उसने अपनी पत्नी के चीखने की आवाज सुनी । राम कृपाल बाहर आया और उसने श्रीनाथ, जो कि साइस है, को देखा कि वह उसकी पत्नी पर चाकू से वार कर रहा है । राम कृपाल (अभि. सा. 1) को देखकर अभियुक्त श्रीनाथ भाग गया किन्तु राम कृपाल ने उसका पीछा किया जिस पर उसने राम कृपाल को धमकी दी कि वह उसे भी चाकू मार देगा, इस पर राम कृपाल डर गया और अपनी पत्नी के निकट पहुंचा जो क्षतिग्रस्त होकर नीचे पड़ी हुई थी और जमीन पर रक्त गिरा हुआ था । राम कृपाल अपनी पत्नी को चौक पर ले गया जहां उनकी भेंट राम कृपाल के श्वसुर राम दुलारे से हुई और वे क्षतिग्रस्त बिमला को एक टी. एस. आर. की सहायता से सफदरजंग अस्पताल ले गए । चिकित्सक द्वारा बिमला का उपचार किया गया और एक घंटे पश्चात् चिकित्सक ने उसे मृत घोषित कर दिया । साइस श्रीनाथ अर्थात् अभियुक्त, बिमला की झुग्गी पर पिछले 4/5 माह से आ रहा था किन्तु विवाद 500/- रुपए को लेकर हुआ जो अभियुक्त ने बिमला को दिए थे किन्तु बिमला ने बताया कि उसने अभियुक्त से कोई पैसा नहीं लिया है और यह कि अभियुक्त ने उस पर मिथ्या आरोप लगाया है और इस पर उसके और उसकी पत्नी के बीच कहासुनी हो गई और इसके पश्चात् समझौता हो गया और अभियुक्त ने राम कृपाल की झुग्गी पर आना बंद कर दिया किन्तु अभियुक्त इस दौरान राम कृपाल को धमकी देता रहता था । उसने राम कृपाल (अभि. सा. 1) की पत्नी पर जानलेवा हमला किया । उसने बिमला के वक्ष के दोनों ओर चाकू से वार किए जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई । मृतका बिमला के पति राम कृपाल (अभि. सा. 1) के उपरोक्त कथन के आधार पर उसी दिन प्रथम इत्तिला

रिपोर्ट दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दर्ज कराई गई और मामले का अन्वेषण पुलिस उप निरीक्षक यशवंत (अभि. सा. 20) को सौंपा गया जिसने अन्वेषण पूरा किया । अपीलार्थी को तारीख 25 मार्च, 1997 को गिरफ्तार किया गया और उसके प्रकटीकरण कथन के अनुसरण में एक रक्तरंजित चाकू, उसकी कमीज और पेंट पंचशील मार्ग के गोल-चक्कर पर लगी फुलवाड़ी में रखे एक गोल पत्थर के नीचे से बरामद किए गए । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् आरोप पत्र फाइल किया गया और अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध कारित किए जाने के लिए आरोप विरचित किया गया । विचारण किए जाने पर न्यायालय ने अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध का दोषी पाया । इस आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – उपरोक्त विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अपने पति की मौजूदगी में टी. एस. आर. में अपने पिता को मृतका द्वारा अपनी मृत्यु के एक घंटे पूर्व ऐसा मौखिक कथन दिया जाना भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के अधीन आएगा जिसका संबंध उसकी मृत्यु से है और यह कथन साक्ष्य की दृष्टि से ग्राह्य होगा । (पैरा 27)

चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र और शवपरीक्षण रिपोर्ट में क्षतियों की संख्या को लेकर अन्तर दिखायी देता है जिसके संबंध में यह दलील दी गई है कि शवपरीक्षण रिपोर्ट में मृतका के शरीर पर 11 क्षतियां पहुंची हैं जबकि चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र से केवल दो क्षतियों का ही पता चलता है । क्योंकि चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र मात्र एक प्राथमिक परीक्षा है जबकि शवपरीक्षण रिपोर्ट में एक विस्तृत उल्लेख होता है, इसलिए चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र की अपेक्षा बाद में तैयार किए गए दस्तावेज अर्थात् शवपरीक्षण रिपोर्ट को वरीयता दी जाएगी । (पैरा 32)

मृतका की बाईं और दाईं बगल के नीचे छुरे से क्षति कारित किए जाने की पुष्टि शवपरीक्षण रिपोर्ट और चिकित्सक की पश्चात्वर्ती राय तथा न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट (जो घटनास्थल से अभिगृहीत

की गई टुटी हुई रक्तरंजित ईंट के संबंध में हैं और जिसपर मृतका का ग्रुप-ए वाला रक्त पाया गया है) से होती है । उपरोक्त अभिवाक् में हमें कोई गुणता दिखाई नहीं देती है क्योंकि दोनों साक्षियों के परिसाक्ष्य में कोई भी विरोधाभास नहीं है और राम दुलारे ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि उसने टी. एस. आर. में बैठने से पूर्व बिमला से कोई पूछताछ नहीं की थी और ऐसा नहीं है कि उसने टी. एस. आर. में यात्रा करने के दौरान उससे यह नहीं पूछा था कि वह कैसे क्षतिग्रस्त हुई । न्यायालय का यह मत है कि चूंकि राम कृपाल मृतका का पति है इसलिए वह नैसर्गिक साक्षी है जो घटना के समय अपनी झुग्गी में मौजूद था और उस दिन होली का त्यौहार था । राम कृपाल का यह परिसाक्ष्य कि उसने अपीलार्थी को बिमला पर छुरे से हमला करते हुए देखा था, विश्वसनीय और विश्वासप्रद पाया गया है । उसके इस अभिसाक्ष्य की पुष्टि अभिलेख पर उपलब्ध वैज्ञानिक साक्ष्य से होती है कि अपीलार्थी ने मृतका पर किस प्रकार हमला किया था । अपराध में प्रयोग किए गए हथियार अर्थात् छुरे को अभियोजन पक्ष द्वारा अपराध से सफलतापूर्वक संबद्ध किया गया है जिसकी पुष्टि मृतका को कारित हुई क्षतियों से भी होती है और उसी के परिणामस्वरूप मृतका की मृत्यु हुई है । इसके अतिरिक्त, मृतका द्वारा दिया गया मृत्युकालिक कथन जिसमें उसने अपीलार्थी को नामित किया है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के अधीन ग्राह्य है । यद्यपि वर्तमान मामला प्रत्यक्ष साक्ष्य से संबंधित मामला है, फिर भी अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थी का हेतुक सफलतापूर्वक साबित किया है कि उसने मृतका की हत्या कारित की है । हमें आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए किसी भी अभिवाक् में कोई गुणता दिखाई नहीं देती है । (23, 29 और 36)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[2018] (2018) एस. सी. सी. आनलाइन एस. सी. 2279
= ए. आई. आर. 2018 एस. सी. 5534 :
मुख्तियार जब्बार ताड़वी बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 26

[1984]	(1984) 4 एस. सी. सी. 116 = ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1622 : **शरद बिरधीचन्द सरदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ।	25

निर्दिष्ट निर्णय

[2013]	(2013) 15 एस. सी. सी. 298 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 3681 : **गंगाभवानी** बनाम **रायापति वेंकटरेड्डी और अन्य** ;	19
[2009]	(2009) 13 एस. सी. सी. 630 = ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 1893 : **मोहब्बत और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	20
[2008]	(2008) 16 एस. सी. सी. 73 = ए. आई. आर. 2009 एस. सी. (सप्ली.) 1238 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **किशनपाल और अन्य** ।	20

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2003 की दांडिक अपील सं. 430.

1997 के सेशन विचारण मामला सं. 55 में तारीख 29 मार्च, 2003 को पारित किए गए दोषसिद्धि के निर्णय के विरुद्ध अपील

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री मुकेश के. सिंह और एम. यासिर खान

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अमित गुप्ता (अपर लोक अभियोजक)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति मनोज कुमार ओहरी ने दिया ।

न्या. ओहरी – वर्तमान अपील 1997 के पुलिस थाना तुगलक रोड, नई दिल्ली में दर्ज की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 77/1997 से उद्भूत सेशन विचारण मामला सं. 55 में तारीख 29 मार्च, 2003 को पारित किए गए दोषसिद्धि के उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में दंड संहिता कहा गया है) की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया था और तारीख 31 मार्च, 2003 के दंडादेश के अनुसार अपीलार्थी को आजीवन कठोर कारावास और 1,000/- रुपए

जुर्माने के संदाय और इस संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त एक मास के साधारण कारावास से दंडादिष्ट किया गया ।

2. विचारण न्यायालय द्वारा उल्लिखित अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार हैं :-

> अभिलेख के अनुसार मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि राम कृपाल (अभि. सा. 1) ने तारीख 24 मार्च, 1997 को अपराह्न लगभग 1.15 बजे अपना कथन (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए) देकर शिकायत दर्ज कराई और वह रेस कोर्स क्लब स्थित अपनी झुग्गी पर मौजूद था और टेलीविजन देख रहा था और उसकी पत्नी बिमला झुग्गी से बाहर गई हुई थी, तभी उसने अपनी पत्नी के चीखने की आवाज सुनी । राम कृपाल बाहर आया और उसने श्रीनाथ, जो कि साइस है, को देखा कि वह उसकी पत्नी पर चाकू से वार कर रहा है । राम कृपाल (अभि. सा. 1) को देखकर अभियुक्त श्रीनाथ भाग गया किन्तु राम कृपाल ने उसका पीछा किया जिस पर उसने राम कृपाल को धमकी दी कि वह उसे भी चाकू मार देगा, इस पर राम कृपाल डर गया और अपनी पत्नी के निकट पहुंचा जो क्षतिग्रस्त होकर नीचे पड़ी हुई थी और जमीन पर रक्त गिरा हुआ था । राम कृपाल अपनी पत्नी को चौक पर ले गया जहां उनकी भेंट राम कृपाल के श्वसुर राम दुलारे से हुई और वे क्षतिग्रस्त बिमला को एक टी. एस. आर. की सहायता से सफदरजंग अस्पताल ले गए । चिकित्सक द्वारा बिमला का उपचार किया गया और एक घंटे पश्चात् चिकित्सक ने उसे मृत घोषित कर दिया । साइस श्रीनाथ अर्थात् अभियुक्त, बिमला की झुग्गी पर पिछले 4/5 माह से आ रहा था किन्तु विवाद 500/- रुपए को लेकर हुआ जो अभियुक्त ने बिमला को दिए थे किन्तु बिमला ने बताया कि उसने अभियुक्त से कोई पैसा नहीं लिया है और यह कि अभियुक्त ने उस पर मिथ्या आरोप लगाया है और इस पर उसके और उसकी पत्नी के बीच कहासुनी हो गई और इसके पश्चात् समझौता हो गया और अभियुक्त ने राम कृपाल की झुग्गी पर आना बंद कर दिया किन्तु अभियुक्त इस दौरान राम कृपाल को धमकी देता रहता था । उसने राम कृपाल (अभि. सा. 1) की पत्नी

पर जानलेवा हमला किया । उसने बिमला के वक्ष के दोनों ओर चाकू से वार किए जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई ।

3. मृतका बिमला के पति राम कृपाल (अभि. सा. 1) के उपरोक्त कथन के आधार पर उसी दिन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दर्ज कराई गई और मामले का अन्वेषण पुलिस उप निरीक्षक यशवंत (अभि. सा. 20) को सौंपा गया जिसने अन्वेषण पूरा किया । अपीलार्थी को तारीख 25 मार्च, 1997 को गिरफ्तार किया गया और उसके प्रकटीकरण कथन के अनुसरण में एक रक्तरंजित चाकू, उसकी कमीज और पेंट पंचशील मार्ग के गोल-चक्कर पर लगी फुलवाड़ी में रखे एक गोल पत्थर के नीचे से बरामद किए गए ।

4. अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् आरोप पत्र फाइल किया गया और अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध कारित किए जाने के लिए आरोप विरचित किया गया । विचारण के दौरान अभियोजन पक्ष ने कुल मिलाकर 20 साक्षियों की परीक्षा कराई ।

वैज्ञानिक साक्ष्य

चिकित्सा-विधिक प्रमाणपत्र

5. डा. सुनील यादव (अभि. सा. 15) द्वारा चिकित्सा-विधिक प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 15/ए) साबित किया गया है जिसके अनुसार तारीख 24 मार्च, 1997 को अपराहन लगभग 1.40 बजे मृतका को उसके पति द्वारा अस्पताल लाया गया था ।

शवपरीक्षण रिपोर्ट

6. डा. जी. के. चौबे (अभि. सा. 6) ने तारीख 25 मार्च, 1997 को पूर्वाहन लगभग 3.30 बजे मृतक का शवपरीक्षण किया और अपनी रिपोर्ट प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/ए साबित की है । शवपरीक्षण रिपोर्ट का सुसंगत भाग निम्न प्रकार है :-

"शवपरीक्षण किए जाने पर, मैंने निम्न बाहय क्षतियां पाईं हैं –

1. दाईं कांख से 5वीं पसली तक 11 सेमी लम्बा टांके लगा हुआ तिरछा छिन्न घाव है, टांके हटाने पर यह घाव चौथी

अन्तर्पर्शुका मांसपेशी वेधता हुआ दिखाई देता है जिसकी माप 3 सेमी × 1 सेमी है, किनारे स्पष्ट कटे हुए हैं और यह दाएं फेफड़े के ऊपरी पिंड के पार्श्व तक फैला हुआ है, फेफड़े के घाव की माप 3 सेमी × 2 सेमी है । दाईं वक्षीय गुहा में लगभग तीन लीटर रक्त भरा हुआ है, फेफड़े सिकुड़े हुए पाए गए हैं ।

2. बाएं कन्धे पर 4 सेमी × 3 सेमी माप का छिन्न घाव है ।

3. बाईं स्कंधास्थि में 3 सेमी × 2 सेमी माप का छिन्न घाव है ।

4. स्कंधास्थि के नीचे बाईं ओर 7 सेमी × 2.8 सेमी माप का छिन्न घाव है ।

5. क्षति सं. 4 के नीचे पीछे की ओर 7 सेमी × 3 सेमी माप का छिन्न घाव है ।

6. मध्य रेखा से 2 इंच की दूरी पर पीछे की ओर 2 सेमी × 3 सेमी माप का छिन्न घाव है ।

7. वक्ष के बाईं ओर इन्फरा मेमेरी क्षेत्र में 3 सेमी × 2 सेमी माप का वेधित घाव है जिसकी गहराई 3 सेमी है । दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवी और छठी क्षति को छोड़कर सभी क्षतियों के आकार में एक न्यून कोण और एक वृहत कोण है ।

8. बाईं जंघा के सामने की ओर 2 सेमी × 1 सेमी माप का छिन्न घाव है जिसमें दो न्यून कोण हैं ।

9. बाईं जंघा के पीछे की ओर 3 सेमी × 1 सेमी माप का छिन्न घाव है जिसमें दो न्यून कोण हैं ।

10. दाएं घुटने पर 6 सेमी × 4 सेमी के क्षेत्र में कईं खरोंचे मौजूद हैं ।

11. बाईं पिंडली पर 6 सेमी × 3 सेमी के क्षेत्र में खरोंचे मौजूद हैं । क्षतियां मृत्यु पूर्व की हैं और मृत्यु के पहले ताजा थीं ।

आन्तरिक परीक्षण

आमाशय में अधपचा भोजन है । अन्य सभी अंगों का रंग

पीला पाया गया है । मृत्यु लगभग 24 घंटे पूर्व हुई है । क्षति सं. 1 वेधित घाव है जिसके परिणामस्वरूप रक्तस्राव हुआ है और इसी से मृत्यु कारित हुई है और क्षति सं. 1 ऐसी क्षति पाई गई है जिससे प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित हो सकती है । रक्तरंजित कपड़े अर्थात् 'ब्लाउज, अंगीया और पेटीकोट' रक्त के नमूने के साथ सम्यक् रूप से परिरक्षित किए गए हैं और उन्हें मुहरबंद करके मुहर के साथ संबंधित अधिकारियों को सौंप दिया गया । मेरी लिखित रिपोर्ट प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/ए है जो मेरे द्वारा ही लिखी गई है और 'ए' बिन्दू पर मेरे हस्ताक्षर हैं ।

7. डा. जी. के. चौबे ने चाकू के संबंध में अपनी पश्चात्वर्ती राय भी व्यक्त की है :-

पश्चात्वर्ती राय – शवपरीक्षण रिपोर्ट सं. 466/97 में उल्लिखित क्षति सं. I से IX ऐसी क्षतियां हैं जो जांचे गए आयुध से कारित की जा सकती हैं ।

न्यायालयिक प्रयोगशाला

8. घटनास्थल से प्राप्त किए गए नमूनों के अतिरिक्त मृतका के कपड़ों सहित शवपरीक्षण करने वाले चिकित्सक द्वारा सौंपे गए नमूनों और अपीलार्थी के बताने पर की गई बरामदगियों को विश्लेषण के लिए न्यायालयिक प्रयोगशाला भेजा गया । डा. वी. के. गोयल (अभि. सा. 14) ने न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्टें (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 14/ए और पी. डब्ल्यू. 14/बी) साबित की हैं । न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट के अनुसार, छुरे अर्थात् चाकू और अपीलार्थी की कमीज पर रक्त पाया गया । सीरम वैज्ञानिक द्वारा किए गए विश्लेषण में, यद्यपि कमीज पर लगे रक्त के ग्रुप का पता नहीं लग सका किन्तु मृतका के अन्तःवस्त्र और घाव-पट्टी (जो शवपरीक्षण करने वाले चिकित्सक द्वारा सौंपी गई थी) छुरे और घटनास्थल से उठाए गए ईंट के टुकड़े पर 'ए' ग्रुप वाला रक्त पाया गया ।

9. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले अधिवक्ता श्री मुकेश के.

सिंह और श्री एन. यासिर खान तथा राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अपर लोक अभियोजक द्वारा दलीलें दी गई हैं ।

10. विद्वान् प्रतिरक्षा काउंसेल ने निम्न आधार पर आक्षेपित निर्णय को चुनौती दी है :-

(1) अपीलार्थी को मिथ्या फंसाया गया है ;

(2) राम कृपाल का परिसाक्ष्य विश्वसनीय नहीं है ;

(3) राम कृपाल और राम दुलारे का परिसाक्ष्य एक दूसरे के प्रतिकूल है ;

(4) इस तथ्य के बावजूद कि घटना दिन-दहाड़े वह भी होली के त्यौहार के दिन घटित हुई थी, किसी भी लोक-साक्षी का न होना ;

(5) जांच रिपोर्ट में सारभूत कमियां हैं जिनका पता चिकित्सा-विधिक प्रमाणपत्र और शवपरीक्षण की तुलना करने पर चलता है ;

(6) चाकू के आरेख के अनुसार अभिलिखित माप और चिकित्सक द्वारा दी गई द्वितीय राय के बीच अन्तर ; और

(7) अंगुलिछाप और स्निफर डॉग संबंधी रिपोर्टों को अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

महत्वपूर्ण साक्षी

11. वर्तमान मामला प्रत्यक्ष साक्ष्य से संबंधित है और इसमें मृतका के पति का परिसाक्ष्य सम्मिलित है । जैसा कि तथ्यों से उद्भूत होता है कि घटना तारीख 24 मार्च, 1997 को घटित हुई थी और उस दिन होली का त्यौहार मनाया जा रहा था । यह घटना मृतका की झुग्गी के बाहर अपराह्न लगभग 1.00 या 1.30 बजे घटित हुई थी । राम कृपाल (अभि. सा. 1) ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि जब वह अपनी झुग्गी में आराम कर रहा था, उसने बाहर की ओर से अपनी पत्नी के चीखने की आवाज सुनी जिस पर वह तुरन्त दौड़कर बाहर गया और उसने देखा कि अपीलार्थी उसकी पत्नी बिमला को छुरा घोंप रहा है जिसमें एक वार बिमला की बगल के नीचे बाईं ओर और दूसरा वार दाईं ओर लगा । राम कृपाल को देखकर अपीलार्थी अपने हाथ में छुरा लिए हुए भाग गया और

जब राम कृपाल ने उसे पकड़ने का प्रयास किया तो राम कृपाल को भी क्षति पहुंचाने की धमकी दी । राम कृपाल ने अपनी क्षतिग्रस्त पत्नी को उठाया और चौक की ओर ले गया जहां उसका श्वसुर राम दुलारे मिला और वह भी राम कृपाल के साथ चल दिया और वे बिमला को टी. एस. आर. द्वारा अस्पताल ले गए । राम कृपाल ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि अस्पताल जाते समय रास्ते में राम दुलारे ने बिमला से पूछताछ की थी जिस पर बिमला ने बताया कि अपीलार्थी ने उस पर छुरे से हमला किया है । राम कृपाल ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि वे अपीलार्थी को पहले से जानते थे क्योंकि वह उनकी झुग्गी पर आता रहता था । इस घटना के लगभग दो मास पूर्व बिमला द्वारा 500/- रुपए के ऋण का प्रतिदाय न किए जाने के कारण अपीलार्थी और राम कृपाल के बीच हाथापाई हो गई थी क्योंकि बिमला ने अपीलार्थी से ऐसा कोई भी ऋण लेने से इनकार किया था । राम कृपाल ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि इस विवाद को निपटाने के लिए, वह अपीलार्थी के साथ कैंप के नेता राजा राम के पास गया था जिसने भविष्य में अपीलार्थी से राम कृपाल की झुग्गी पर न जाने को कहा किन्तु अपीलार्थी उनकी झुग्गी पर जाता रहा ।

12. मृतका के पिता राम दुलारे की परीक्षा अभि. सा. 3 के रूप में कराई गई है । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह भी उसी कैंप का निवासी है और वह उस समय कीर्तन में उपस्थित था जब उसे यह सूचना मिली थी कि उसकी पुत्री अपराह्न लगभग 1.00/1.30 बजे क्षतिग्रस्त हो गई है । वह झुग्गी की ओर गया और उसने देखा कि राम कृपाल क्षतिग्रस्त बिमला को अपनी बाहों में उठाकर चौक की ओर ले जा रहा है । राम दुलारे ने यह भी साक्ष्य दिया है कि वह राम कृपाल और अपनी क्षतिग्रस्त पुत्री के साथ टी. एस. आर. से अस्पताल गया था । उसने अस्पताल जाते समय बिमला से घटना के बारे में मालूम किया था जिस पर उसने बताया कि उस पर अपीलार्थी द्वारा छुरे से हमला किया गया है । उसने यह स्पष्ट किया कि उसने बिमला से घटना के बारे में टी. एस. आर. में बैठने से पूर्व मालूम नहीं किया था । इसके अतिरिक्त, राम दुलारे ने घटना के बारे में केवल राम कृपाल से उस समय पूछताछ की जब वे टी. एस. आर. से अस्पताल जा रहे थे ।

13. अभियोजन पक्ष ने टी. एस. आर. चालक की परीक्षा अभि. सा. 2 के रूप में कराई है । इस साक्षी ने यह साक्ष्य दिया है कि तारीख 24 मार्च, 1997 को अपराह्न 1.00 और 2.00 बजे के बीच जब वह होली खेल रहा था तब लोगों के निवेदन पर वह आहत महिला को दो पुरुषों की सहायता से टी. एस. आर. द्वारा सफदरजंग अस्पताल ले गया था । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा की गई प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने यह कथन किया है कि उस महिला के शरीर से रक्त बह रहा था और वह कुछ बोल रही थी किन्तु उसके शब्द स्पष्ट समझ में नहीं आ रहे थे क्योंकि वह टी. एस. आर. चलाने में व्यस्त था ।

14. एक अन्य साक्षी अर्थात् राम किशन जो उसी कैम्प का निवासी है, की परीक्षा अभि. सा. 5 के रूप में कराई गई है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि तारीख 24 मार्च, 1997 को अपराह्न लगभग 1.30 बजे जब वह अपना मुंह धो रहा था, उसने अपीलार्थी को अपने हाथ में छुरा लेकर भागते हुए देखा जो वायुसेना स्टेशन की दीवार पर चढ़ रहा था । इस साक्षी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि यह अपीलार्थी को जानता था क्योंकि वह उसी क्षेत्र का निवासी था । इस साक्षी ने यह स्पष्ट किया है कि क्योंकि उसने बस छुरे की एक झलक देखी थी, वह उसकी शनाख्त करने की स्थिति में नहीं है ।

15. कैम्प के अध्यक्ष राजा राम की परीक्षा अभि. सा. 4 के रूप में कराई गई है जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि इस घटना के लगभग 4-5 मास पूर्व अपीलार्थी और राम कृपाल ने ऋण का संदाय न किए जाने के विवाद को निपटाने के लिए उससे संपर्क किया । चमेली (अभि. सा. 15) जो उसी कैम्प की निवासी है, की परीक्षा ऋण संव्यवहार को साबित करने के लिए कराई गई है जिसमें वह पक्षद्रोही हो गई है ।

16. उप निरीक्षक यशवंत (अभि. सा. 20) ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि घटना से संबंधित सूचना प्राप्त होने पर वह घटनास्थल पर पहुंचा और राम कृपाल का कथन अभिलिखित किया तथा रूक्का (प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-20ए) तैयार किया । उसने घटनास्थल से सामग्री अभिगृहीत की जिसमें रक्तरंजित ईंट, टूटी हुई चूड़ियां, रक्तरंजित मिट्टी, रक्तरंजित प्लास्टर आदि थे । इस सामान को अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/ए से प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/जी के रूप में अभिगृहीत किया । उसने हेड

कांस्टेबल के साथ अपीलार्थी को गिरफ्तार कराया और अपीलार्थी के प्रकटीकरण कथन के अनुसार उसने छुरा बरामद कराया और अपीलार्थी की कमीज और पेंट भी बरामद कराई । हेड कांस्टेबल प्रीतपाल की परीक्षा अभि. सा. 19 के रूप में कराई गई है । उसका परिसाक्ष्य उप-निरीक्षक यशवन्त के परीसाक्ष्य का संचयी भाग है । शेष साक्षियों की परीक्षा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने तथा अन्वेषण के अन्य कार्यों को साबित करने के संबंध में है ।

17. राम कृपाल (अभि. सा. 1) ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि घटना की तारीख से लगभग दो मास पूर्व उसका झगड़ा 500/- रुपए के ऋण को लेकर अपीलार्थी के साथ हो गया था और इस झगड़े की चर्चा कैम्प के लीडर राजा राम (अभि. सा. 4) से भी की गई थी । यह उल्लेखनीय है कि इस घटना के पूर्व झगड़े की घटना का तथ्य ऋण का संदाय न किए जाने के संबंध में है जिससे अपीलार्थी द्वारा इनकार नहीं किया गया है । चुनौती केवल इस झगड़े के समय को दी गई है । वास्तव में, किसी भी साक्षी को ऐसा कोई सुझाव नहीं दिया गया है जिससे अपीलार्थी और राम कृपाल के बीच इस घटना से पूर्व हुए झगड़े के तथ्य को अभिखंडित किया जा सके । यह भी उल्लेखनीय है कि साक्षियों को ऐसा भी कोई सुझाव नहीं दिया गया है जिससे घटना के समय घटनास्थल पर अपीलार्थी की मौजूदगी पर विवाद किया जा सके । राजा राम द्वारा निपटाए गए विवाद के संबंध में राम कृपाल द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य की संपुष्टि राजा राम के परिसाक्ष्य से होती है क्योंकि इस साक्षी ने भी यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी और राम कृपाल ने इस घटना से 4-5 मास पूर्व ऋण के विवाद को लेकर संपर्क किया था ।

18. जहां तक उक्त विवाद की समयावधि में आए फर्क का संबंध है, यह दलील दी गई है कि यद्यपि राम कृपाल ने यह कथन किया है कि यह विवाद घटना से लगभग दो मास पूर्व हुआ था किन्तु राजा राम ने यह कथन किया है कि यह विवाद घटना से 4-5 मास पूर्व हुआ था । इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि साक्षियों की परीक्षा इस विवाद के दो वर्षों के बाद की गई है, अतः इस प्रकार आए फर्क का कोई महत्व नहीं है । अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक यह साबित किया है कि

अपीलार्थी और राम कृपाल के बीच मृतका बिमला द्वारा अपीलार्थी को ऋण न चुकाए जाने के कारण पूर्व विवाद चल रहा था ।

19. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने राम कृपाल के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने की विश्वसनीयता पर इस आधार पर भी संदेह किया है कि वह मृतका का नातेदार है । निःसंदेह, नातेदार साक्षी के परिसाक्ष्य की संवीक्षा पूरी सतर्कता के साथ की जानी चाहिए । इस संदर्भ में, **गंगाभवानी** बनाम **रायापति वेंकटरेड्डी और अन्य**[1] वाले मामले के पैरा 11 और 14 में उच्चतम न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया है :-

> "15. ... इस प्रकार, साक्ष्य को मात्र इस आधार पर अविश्वसनीय नहीं ठहराया जा सकता कि साक्षी एक दूसरे के नातेदार हैं या मृतक के नातेदार हैं । यदि साक्ष्य विश्वसनीय प्रतीत होता है, तब यह तर्कसम्मत् और विश्वासप्रद माना जाता है और इसका निश्चित रूप से अवलंब लिया जाना चाहिए ।
>
> 18. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि नैसर्गिक साक्षी को हितबद्ध साक्षी नहीं माना जा सकता । हितबद्ध साक्षी वे होते हैं जो मुकदमे से कोई लाभ उठाना चाहते हैं । यदि परिस्थितियों से यह दर्शित होता है कि साक्षी घटनास्थल पर मौजूद था और उसने अपराध घटित होते हुए देखा था, तब उसके अभिसाक्ष्य को मात्र इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता कि वह आहत/मृतक का निकट नातेदार है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

20. **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **किशनपाल और अन्य**[2] और **मोहब्बत और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[3] वाले मामलों को भी निर्दिष्ट किया जा सकता है जिनमें ऐसा ही मत व्यक्त किया गया है ।

21. राम कृपाल मृतका का पति है । घटना होली वाले दिन घटित हुई थी और साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह अपनी पत्नी के

---

[1] (2013) 15 एस. सी. सी. 298 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 3681.

[2] (2008) 16 एस. सी. सी. 73 = ए. आई. आर. 2009 एस. सी. (सप्ली.) 1238.

[3] (2009) 13 एस. सी. सी. 630 = ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 1893.

साथ अपनी झुग्गी में मौजूद था । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसकी पत्नी झुग्गी के बाहर गई हुई थी और थोड़ी देर बाद उसके चीखने की आवाज सुनकर वह झुग्गी के बाहर की ओर दौड़ा और उसने देखा कि अपीलार्थी उसकी पत्नी की बाईं और दाईं बगल के नीचे छुरे से वार कर रहा है । राम कृपाल की प्रतिपरीक्षा के परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि उसे ऐसा कोई भी सुझाव नहीं दिया गया कि वह घटना के समय अपनी झुग्गी में मौजूद नहीं था । इसके प्रतिकूल यह सुझाव दिया गया कि वह घटना के दिन अपनी झुग्गी में टेलीविजन देख रहा था जबकि लोग बाहर होली खेल रहे थे ।

22. अपीलार्थी ने घटनास्थल पर कोई विवाद नहीं किया है । किसी भी साक्षी को इसके प्रतिकूल कोई भी सुझाव नहीं दिया गया है । घटनास्थल राम कृपाल की झुग्गी के ठीक सामने था । इस संबंध में, उसकी प्रतिपरीक्षा का सुसंगत भाग निम्न प्रकार है :-

> "... यह घटना हरिलाल की झुग्गी के ठीक सामने घटित हुई है और मेरी झुग्गी घटनास्थल से दो कदम की दूरी पर है । यह कहना सही नहीं है कि अभियुक्त श्रीनाथ ने मेरी पत्नी को कोई क्षति कारित नहीं की ।"

23. मृतका की बाईं और दाईं बगल के नीचे छुरे से क्षति कारित किए जाने की पुष्टि शवपरीक्षण रिपोर्ट और चिकित्सक की पश्चात्वर्ती राय तथा न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट (जो घटनास्थल से अभिगृहित की गई टुटी हुई रक्तरंजित ईंट के संबंध में हैं और जिसपर मृतका का ग्रुप-ए वाला रक्त पाया गया है) से होती है ।

24. राम कृपाल ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि वह अपनी आहत पत्नी को चौक पर ले गया था और इसके पश्चात् अपने ससुर राम दुलारे के साथ उसे टी. एस. आर. द्वारा सफदरजंग अस्पताल ले गया था जिसे संजय (अभि. सा. 2) चला रहा था । मृतका के पिता राम दुलारे और टी. एस. आर. चालक संजय एक ही कैंप के निवासी हैं । संजय स्वतंत्र साक्षी है । राम दुलारे और संजय के परिसाक्ष्यों का परिशीलन करने से यह उपदर्शित होता है कि इन साक्षियों ने राम कृपाल

के अभिसाक्ष्य का समर्थन इस संबंध में दिया है कि वह अपनी पत्नी को चौक पर लेकर गया था और इसके पश्चात् वह उसे टी. एस. आर. की सहायता से अस्पताल ले गया था । चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र अपराह्न 1.40 बजे अभिलिखित किया गया था जिससे यह पता चलता है कि आहत को उसके पति राम कृपाल द्वारा अस्पताल लाया गया था ।

25. यह उल्लेखनीय है कि राम दुलारे और राम कृपाल दोनों ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि जब मृतका को टी. एस. आर. से भेजा जा रहा था तब राम दुलारे द्वारा पूछने पर मृतका ने यह बताया कि उस पर अपीलार्थी द्वारा छुरे से हमला किया गया है । मृतका ने यह सब जानकारी लड़खड़ाती आवाज में दी थी जिसकी पुष्टि स्वतंत्र साक्षी टी. एस. आर. चालक द्वारा की गई है । यद्यपि पुलिस द्वारा अभिलिखित किए गए अपने कथन में राम कृपाल ने यह उल्लेख नहीं किया है कि आहत ने यह बताया था कि उस पर अपीलार्थी द्वारा छुरे से हमला किया गया है, तथापि, राम दुलारे ने घटना के ही दिन पुलिस द्वारा अभिलिखित कथन में यह सब उल्लेख किया था । राम कृपाल या राम दुलारे को ऐसा कोई सुझाव नहीं दिया गया है कि मृतका बिमला बेहोश थी या यह कि उसने इन साक्षियों को कुछ नहीं बताया था । यह सुसंगत है कि मृतका बिमला की मृत्यु अस्पताल पहुंचने के एक घंटे के भीतर हो गई थी । अभिलेख पर उपलब्ध वैज्ञानिक साक्ष्य के निबंधनों में यह सफलतापूर्वक साबित हो गया है कि मृतका की मृत्यु छुरे से कारित की गई क्षति के कारण हुई है । इन परिस्थितियों में, मृतका बिमला द्वारा दिया गया कथन, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32 के अधीन मृत्युकालिक कथन माना जाएगा । इस संबंध में, **शरद बिरधीचन्द सरदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट किया गया है जिसमें निम्न अभिनिर्धारित किया गया है :-

> "21. इस प्रकार ऊपर उल्लिखित नजीरों और साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) की स्पष्ट भाषा का पुनर्विलोकन करने से निम्न प्रतिपादनाएं उद्भूत होती हैं –

---

[1] (1984) 4 एस. सी. सी. 116 = ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1622.

(1) धारा 32 अनुश्रुत साक्ष्य के नियम के लिए एक अपवाद है जिसके अधीन उस व्यक्ति के कथन को ग्राह्य माना गया है जिसकी मृत्यु हो चुकी है, भले ही मृत्यु मानव वध हो या आत्महत्या, किन्तु ऐसा तब होगा जब उस कथन का सीधा संबंध मृत्यु कारित किए जाने से हो या उस कथन से उन परिस्थितियों का पता चलता हो जिनका संबंध मृत्यु से है । इस संबंध में, जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अधीन हमारे समाज की विशिष्ट परिस्थितियों और हमारे लोगों की विविध प्रकृति और लक्षण को दृष्टिगत करते हुए यह आवश्यक है कि अन्याय से बचने के लिए धारा 32 की व्यापकता को विस्तृत किया जाए ।

(2) सन्निकटता की परख का भौतिक अर्थ नहीं लगाया जा सकता और व्यवहारिक रूप से उसका अर्थ इतना संकुचित नहीं किया जा सकता कि उसका प्रयोग सार्वत्रिक रूप से किया जा सके । सन्निकटता की सीमा प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करती है । उदाहरणार्थ, यदि मृत्यु एक लम्बी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप तार्किक रूप से होती है और घटनाक्रम से पूरी तरह मेल खाती है, तब इस संबंध में दिया गया कथन साक्ष्य की दृष्टि से ग्राह्य होगा क्योंकि उसका सीधा संबंध घटना के प्रत्येक चरण के साथ होता है और सम्पूर्ण कथन का अर्थ संदर्भ के साथ ही लगाया जाना चाहिए । कभी-कभी ऐसा कथन भी मृत्यु के संव्यवहार के रूप में साक्ष्य में ग्राह्य हो सकता है जो तत्काल हेतु के साथ सुसंगत होता है या उसका सृजन करता है । यह स्पष्ट है कि ये सभी कथन केवल मृतक की मृत्यु के पश्चात् ही विचारणीय होते हैं जो मृतक ने अपनी मृत्यु के ठीक पूर्व दिए होते हैं । उदाहरण के लिए यदि विवाह के थोड़े समय बाद ही मृत्यु हो जाती है या समय की सन्निकटता 3-4 मास से अधिक नहीं है, तब मृतक का कथन धारा 32 के अधीन ग्राह्य हो सकता है ।

(3) धारा 32 के खंड (1) का द्वितीय भाग उस नियम का एक अन्य अपवाद है कि दांडिक विधि में ऐसे व्यक्ति का साक्ष्य महत्वहीन है जिसकी प्रतिपरीक्षा कराए जाने का अवसर अभियुक्त को न दिया जाए क्योंकि प्रतिपरीक्षा सत्यनिष्ठा और पवित्रता की शपथ दिलाकर करायी जाती है किन्तु मृत्युकालिक कथन के मामले में ऐसा नहीं है जिसका मात्र कारण यह है कि मृत्यु आसन्न व्यक्ति संभव्यता मिथ्या कथन नहीं दे सकता जब तक कि ऐसा कोई ठोस साक्ष्य न हो जिससे यह दर्शित होता हो कि मृत्युकालिक कथन उकसाकर या सिखाए-पढ़ाए जाने के बाद प्राप्त किया गया है ।

(4) यह उल्लेखनीय है कि धारा 32 मात्र मानव वध के ही बारे में नहीं है अपितु इसका संबंध आत्महत्या के मामले से भी है, अतः ऐसी सभी परिस्थितियां जो मानव वध के मामले को साबित करने के लिए सुसंगत हो सकती हैं, वे आत्महत्या के मामले को साबित करने के लिए भी समान रूप से सुसंगत होंगी ।

(5) जब मुख्य साक्ष्य के रूप में मृतका का कथन और उसके द्वारा लिखे गए पत्र हों जिनका सीधा संबंध मृतका की मृत्यु के साथ हो और जिनसे पूरी कहानी स्पष्ट होती हो तब ऐसा कथन पूर्ण रूप से साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के अधीन आएगा और इसीलिए, वह ग्राह्य होगा । ऐसे मामले में, मात्र समय बीतने की अभी से कथन असंगत नहीं माना जाएगा ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

26. इस संबंध में, **मुख्तियार जब्बार ताड़वी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले को भी निर्दिष्ट किया जा सकता है ।

27. उपरोक्त विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए यह निष्कर्ष

[1] (2018) एस. सी. सी. आनलाइन एस. सी. 2279 = ए. आई. आर. 2018 एस. सी. 5534.

निकाला जा सकता है कि अपने पति की मौजूदगी में टी. एस. आर. में अपने पिता को मृतका द्वारा अपनी मृत्यु के एक घंटे पूर्व ऐसा मौखिक कथन दिया जाना भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के अधीन आएगा जिसका संबंध उसकी मृत्यु से है और यह कथन साक्ष्य की दृष्टि से ग्राह्य होगा ।

28. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि राम कृपाल और राम दुलारे दोनों के परिसाक्ष्य एक दूसरे के प्रतिकूल हैं । उसने यह इंगित किया है कि राम कृपाल ने यह कथन दिया था कि उसने उसकी पत्नी को उठा लिया था और चौक की तरफ गया था जहां पर उसने सवारी के लिए टी. एस. आर. लिया । उसका ससुर वहां आया और उनके साथ अस्पताल गया । दूसरी ओर, राम दुलारे ने यह कथन किया है कि घटना के बारे में जानकारी प्राप्त होने पर वह झुग्गी पर गया और इसके पश्चात् वह चौक की ओर रवाना हुआ और उसने देखा कि राम कृपाल आहत को उठाए हुए चौक की ओर ले जा रहा है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी इंगित किया है कि राम दुलारे ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह कथन किया है कि उसने बिमला को टी. एस. आर. में बिठाने के पूर्व बिमला से घटना के संबंध में पूछताछ नहीं की थी । उन्होंने यह दलील दी है कि उपरोक्त के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि राम दुलारे ने बिमला से कभी पूछताछ नहीं की बल्कि राम कृपाल से मालूम किया था । राम दुलारे की प्रतिपरीक्षा का सुसंगत भाग निम्न प्रकार उद्धृत हैं :-

> "मैंने, टी. एस. आर. में बिठाने से पहले बिमला से घटना के संबंध में पूछताछ नहीं की । इसी प्रकार, मैंने केवल राम कृपाल से घटना के बारे में मालूम किया था जब हम टी. एस. आर. से अस्पताल जा रहे थे ।"

29. उपरोक्त अभिवाक् में हमें कोई गुणता दिखायी नहीं देती है क्योंकि दोनों साक्षियों के परिसाक्ष्य में कोई भी विरोधाभाष नहीं है और राम दुलारे ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि उसने टी. एस. आर. में बैठने से पूर्व बिमला से कोई पूछताछ नहीं की थी और ऐसा नहीं है कि उसने टी. एस. आर. में यात्रा करने के दौरान उससे यह नहीं पूछा था कि वह कैसे क्षतिग्रस्त हुई ।

30. विद्वान् काउंसेल की अगली दलील इस संबंध में है कि कोई भी स्वतंत्र साक्षी नहीं बनाया गया है । अभि. सा. 1 द्वारा उसके अभिसाक्ष्य में यह स्पष्ट किया गया है कि आम जनता में से कोई भी व्यक्ति उसकी झुग्गी के बाहर मौजूद नहीं था जब वह अपनी पत्नी के चीखने की आवाज सुनकर बाहर आया था । इसके अतिरिक्त, टी. एस. आर. चालक संजय एक स्वतंत्र साक्षी है जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 3 आहत को उसके वाहन से अस्पताल लेकर गए थे । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि आहत के शरीर से रक्त बह रहा था और वह कुछ कहने का प्रयास कर रही थी जिसे वह नहीं सुन सका क्योंकि आहत ठीक प्रकार नहीं बोल पा रही थी ।

31. यह घटना अपराह्न लगभग 1.00 से 1.30 बजे घटित हुई थी और चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र अपराह्न लगभग 1.40 बजे तैयार किया गया था जिसके पश्चात् अपराह्न 4.00 बजे रुक्का तैयार किया गया । न तो अपीलार्थी ने ऐसा पक्षकथन रखा है और न ही साक्षियों को ऐसा कोई सुझाव दिया गया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट समय-पूर्व की है ।

32. चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र और शवपरीक्षण रिपोर्ट में क्षतियों की संख्या को लेकर अन्तर दिखायी देता है जिसके संबंध में यह दलील दी गई है कि शवपरीक्षण रिपोर्ट में मृतका के शरीर पर 11 क्षतियां पहुंची हैं जबकि चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र से केवल दो क्षतियों का ही पता चलता है । क्योंकि चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र मात्र एक प्राथमिक परीक्षा है जबकि शवपरीक्षण रिपोर्ट में एक विस्तृत उल्लेख होता है, इसलिए चिकित्सा विधिक प्रमाणपत्र की अपेक्षा बाद में तैयार किए गए दस्तावेज अर्थात् शवपरीक्षण रिपोर्ट को वरीयता दी जाएगी ।

33. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अभियोजन पक्ष छुरे को अपराध से संबद्ध करने में असफल रहा है जिसका यह आधार है कि छुरे की विमाएं उस आरेख से भिन्न हैं जो उस समय तैयार किया गया था जब चिकित्सक द्वारा पश्चात्वर्ती राय दी गई थी । दोनों आरेखों में छुरे की माप इस प्रकार हैं :–

आरेख		पश्चात्वर्ती राय के समय
लकड़ी का हत्था		
लम्बाई	13 से. मी.	13 से. मी.
चौड़ाई	–	3.4 से. मी.
फलक		
लम्बाई	27.5 से. मी.	27 से. मी.
चौड़ाई	5.8 से. मी.	5.5 से. मी.

34. छुरा रक्तरंजित कमीज और पैंट अपीलार्थी की गिरफ्तारी के पश्चात् तारीख 25 मार्च, 1997 को दिए गए प्रकटीकरण कथन के अनुसार बरामद की गई । अभिग्रहण ज्ञापन में छुरे को प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 18/जी के रूप में दर्शाया गया है और उसका आरेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 19/ए है, यह उल्लेख किया गया है कि छुरे पर रक्त लगा हुआ था, छुरे का फलक आगे से नुकीला था और उसके ऊपर की ओर लोहे की पत्ती लगी हुई थी । जबकि पश्चात्वर्ती राय (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/बी) के अनुसार डा. ने यह बताया है कि छुरे के फलक के एक ओर रक्त लगा हुआ था जिसका दूसरा सिरा कुंद था और पहला सिरा धारदार था । सारणी में दी गई उपरोक्त माप दो अलग-अलग समय पर अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा ली गई है और यह अन्तर अधिक महत्वपूर्ण नहीं है । छुरे का वर्णन जो दो प्रदर्शों में किया गया है, एक दूसरे से मेल खाता है । इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 6 या अभि. सा. 19 या अभि. सा. 20 से, जिनकी उपस्थिति में आरेख तैयार किया गया था, इस संबंध में कोई भी प्रश्न नहीं पूछा गया है ।

35. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई यह दलील कि अभिलेख पर अंगुलिछाप या स्निफर-डॉग की रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई है, पुलिस उप निरीक्षक यशवंत ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह स्पष्ट किया है कि उसने घटनास्थल से चान्स-प्रिन्ट नहीं लिए थे । जहां तक स्निफर-डॉग की रिपोर्ट का संबंध है, उप-निरीक्षक यशवंत ने यह कथन किया है कि डॉग के मास्टर द्वारा कोई भी रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई है ।

निष्कर्ष

36. हमारा यह मत है कि चूंकि राम कृपाल मृतका का पति है इसलिए वह नैसर्गिक साक्षी है जो घटना के समय अपनी झुग्गी में मौजूद था और उस दिन होली का त्यौहार था । राम कृपाल का यह परिसाक्ष्य कि उसने अपीलार्थी को बिमला पर छुरे से हमला करते हुए देखा था, विश्वसनीय और विश्वासप्रद पाया गया है । उसके इस अभिसाक्ष्य की पुष्टि अभिलेख पर उपलब्ध वैज्ञानिक साक्ष्य से होती है कि अपीलार्थी ने मृतका पर किस प्रकार हमला किया था । अपराध में प्रयोग किए गए हथियार अर्थात् छुरे को अभियोजन पक्ष द्वारा अपराध से सफलतापूर्वक संबद्ध किया गया है जिसकी पुष्टि मृतका को कारित हुई क्षतियों से भी होती है और उसी के परिणामस्वरूप मृतका की मृत्यु हुई है । इसके अतिरिक्त, मृतका द्वारा दिया गया मृत्युकालिक कथन जिसमें उसने अपीलार्थी को नामित किया है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के अधीन ग्राह्य है । यद्यपि वर्तमान मामला प्रत्यक्ष साक्ष्य से संबंधित मामला है, फिर भी अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थी का हेतुक सफलतापूर्वक साबित किया है कि उसने मृतका की हत्या कारित की है । हमें आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए किसी भी अभिवाक् में कोई गुणता दिखायी नहीं देती है ।

37. तद्नुसार, यह अपील खारिज की जाती है । आक्षेपित निर्णय कायम रखा जाता है । अपीलार्थी का जमानतपत्र रद्द किया जाता है और उसे यह निदेश दिया जाता है कि वह इस निर्णय की तारीख से एक सप्ताह के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण करे । विचारण न्यायालय का अभिलेख इस निर्णय की एक प्रति के साथ वापस भेजा जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

मोहम्मद नसीम रजा रहमानी उर्फ **मुन्ना**

बनाम

बिहार राज्य

(2011 की दांडिक अपील सं. 49)

तारीख 5 नवंबर, 2018

न्यायमूर्ति आदित्य कुमार त्रिवेदी और न्यायमूर्ति राजेन्द्र कुमार मिश्रा

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 303 और 304 [दंड संहिता, 1860 की धारा 302] – विचारण न्यायालय द्वारा हत्या के मामले में दोषसिद्धि – विधिक सहायता का न दिया जाना – आदेश-पत्रिका से विधिक सहायता न दिए जाने की पुष्टि – विचारण न्यायालय के अभिलेख में आदेश-पत्रिका के परिशीलन से पता चलता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी को राज्य के खर्चे पर वकील उपलब्ध कराने का अवसर नहीं दिया गया है, अतः ऐसा विचारण न्यायोचित नहीं है और अपास्त किए जाने योग्य है तथा नए सिरे से विचारण किए जाने के लिए अभियुक्त-अपीलार्थी को विधिक सहायता उपलब्ध कराना आवश्यक है ।

एकमात्र अपीलार्थी मोहम्मद नसीम रजा रहमानी **उर्फ** मुन्ना को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में दंड संहिता कहा गया है) की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषी पाया गया है और अपर जिला न्यायाधीश-II, मधुबनी द्वारा तारीख 13 दिसंबर, 2010 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय और तारीख 14 दिसंबर, 2010 को पारित दंडादेश के अनुसार आजीवन कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया है । मृतक मोहम्मद मुतीउर्रहमान की पत्नी अजीमा खातून, ग्राम- रामखेतारी, पुलिस थाना- राजनगर, जिला- मधुबनी ने तारीख 15 जुलाई, 2009 को एक लिखित रिपोर्ट फाइल की जिसमें यह उल्लेख किया कि उसी दिन लगभग 2 बजे अपराह्न में उसका पति अपने कमरे में भोजन कर रहा था, उनका पुत्र मोहम्मद नसीम रजा रहमानी **उर्फ** मुन्ना, आयु 30 वर्ष

राजनगर से आया और जैसे ही वह वहां पहुंचा, अपने पिता को गालियां देने लगा । वह कमरे के अन्दर आया और उसने भीतर से कमरा बन्द कर लिया और अपने पिता पर हमला करने लगा, तब उसका पति अर्थात् मृतक मदद के लिए चिल्लाया । चीख-पुकार की आवाज सुनकर उसकी पुत्री रूही खातून दौड़कर आई और उसने देखा कि कमरे का दरवाजा भीतर से बंद है तब वह घर के बाहर आई और उसने चिल्लाते हुए कहा कि उसका भाई उसके पिता पर अन्दर से कमरा बन्द करके हमला कर रहा है जिस पर मोहल्ले के व्यक्ति जमा हो गए । उन्होंने किसी प्रकार दरवाजा खोलने का प्रयास किया । मोहम्मद नसीम रजा रहमानी **उर्फ** मुन्ना द्वारा दरवाजा खोले जाने पर सभी कमरे के अन्दर आ गए और अजीमा खातून ने अपने पति मोहम्मद मुतीउर्रहमान को खून से लथपथ बिस्तर पर पड़ा हुआ पाया । उसका पुत्र खन्ती से लैस था । उसने अपने पति के सिर में क्षति पाई । मृतक के सिर में से रक्त बह रहा था । उसके दोनों हाथ भी क्षतिग्रस्त थे । वह कराह रहा था । सभी व्यक्तियों ने उसे उठाया और राजनगर अस्पताल ले गए जहां से मृतक को डी. एम. सी. एच. के लिए भेज दिया । पड़ोसियों की सहायता से उसने अपने पुत्र अर्थात् मोहम्मद नसीम रजा रहमानी को पकड़ लिया । पुलिस के पहुंचने पर पुलिस को लिखित शिकायत अभियुक्त के साथ प्रस्तुत की गई । पुलिस थाना राजनगर में मामला सं. 116/2009 दर्ज कराए जाने के पश्चात् अन्वेषण आरंभ किया गया और अन्वेषण के दौरान आहत मोहम्मद मुतीउर्रहमान की मृत्यु हो जाने के कारण दंड संहिता की धारा 302 जोड़ी गई जिसके अधीन अन्वेषण पूरा किए जाने के पश्चात् आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, विचारण किया गया और उसके पश्चात् पारित किए गए आदेश से व्यथित होकर वर्तमान अपील प्रस्तुत की गई है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – मात्र इस कारण से कि उच्चतम न्यायालय द्वारा देश में मजिस्ट्रेट तथा सेशन न्यायाधीश को यह निदेश दिया गया है कि वे अपने समक्ष बिना किसी माध्यम से पेश होने वाले प्रत्येक अभियुक्त को इस संबंध में सूचित करें कि वह राज्य के खर्चे पर निःशुल्क विधि सहायता पाने का हकदार है । इसका अनुपालन किए जाने के लिए

न्यायालय बाध्य थे और बाध्य हैं । अभियुक्त को राज्य के खर्चे पर विधिक प्रतिनिधि उपलब्ध कराया जाना चाहिए जब तक कि वह स्वयं ऐसा किए जाने से इनकार न करे । उच्चतम न्यायालय द्वारा दिया गया यह निदेश पूरे भारत में सभी न्यायालयों पर बाध्य है जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 141 के अधीन उपबंधित है । अतः, इससे संबंधित सभी से यह प्रत्याशा की जाती है कि इस निदेश का समुचित रूप से पालन किया जाए । यह सुनिश्चित करने के लिए कि विद्वान् निचले न्यायालय ने इस निदेश का पालन किया है या नहीं आदेश-पत्रिका (आर्डर-शीट) का समुचित रूप से सत्यापन किया गया है । इसका परिशीलन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि न तो आरोप विरचित किए जाने की तारीख को और न ही उसके पश्चात् न्यायालय ने यह मालूम किया कि अभियुक्त की ओर से कोई वकील नियुक्त किया गया है या नहीं और न ही विद्वान् पीठासीन अधिकारी ने यह कहा कि अभियुक्त को राज्य के खर्चे पर वकील उपलब्ध कराया जाए । विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा आदेश पत्रिका में ऐसा कोई टिप्पण नहीं किया गया है जिससे यह पता चलता हो कि इस संबंध में कोई प्रयास किया गया था । तथापि, अभि. सा. 1 के अभिसाक्ष्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस संबंध में कोई टिप्पणी की गई है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय के ऊपर निर्दिष्ट निदेशों के अनुसरण में यह स्पष्ट है कि विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष चलने वाले विचारण से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 303 और 304 की आज्ञा का अतिक्रमण हुआ है जिसका यह अर्थ हुआ कि वास्तव में अपीलार्थी को प्रतिरक्षा का अवसर नहीं मिला है जिसके परिणामस्वरूप यह निर्णय कायम रखे जाने योग्य नहीं है और अपास्त किया जाता है । इस प्रकार यह अपील मंजूर की जाती है । (पैरा 22, 23 और 24)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2017] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 2397 = (2017) 13 एस. सी. सी. 491 : **मचिन्द्रा** बनाम **सज्जन गल्फा रणखम्ब** ; 13

[2016] ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 4745 :
ढाल सिंह देवांगन बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** ; 13

[1985] 1985 क्रिमिनल ला जर्नल 324 (गुज.) :
भारत संघ बनाम **अब्दुलकादर अब्दुलगनी मसमानी और अन्य** ; 13

[1983] ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 624 :
रंजन द्विवेदी बनाम **भारत संघ** ; 13, 20

[1982] 1982 क्रिमिनल ला जर्नल 2314 (राज.) :
जगमोहन बनाम **राजस्थान राज्य** ; 13

[1981] ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 928 :
खत्री बनाम **बिहार राज्य** ; 13, 21

[1979] ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1369 :
हुसैनआरा खातून बनाम **गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना** ; 13, 19

[1978] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 59 :
बीर सिंह बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 13

[1975] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1026 :
राम कुमार पाण्डेय बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 13

[1965] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1887 :
राजेश्वर प्रसाद मिश्रा बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** । 13

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 49.

2010 के सेशन विचारण मामला सं. 29 में अपर जिला न्यायाधीश – II द्वारा तारीख 13 दिसंबर, 2010 और तारीख 14 दिसंबर, 2010 को क्रमशः पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री रमाकांत शर्मा (ज्येष्ठ अधिवक्ता) और राजेश कुमार
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री अश्विनी कुमार सिन्हा (अपर लोक अभियोजक)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आदित्य कुमार त्रिवेदी ने दिया ।

न्या. त्रिवेदी – एकमात्र अपीलार्थी मोहम्मद नसीम रजा रहमानी **उर्फ** मुन्ना को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में दंड संहिता कहा गया है) की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषी पाया गया है और अपर जिला न्यायाधीश-II, मधुबनी द्‌वारा तारीख 13 दिसंबर, 2010 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय और तारीख 14 दिसंबर, 2010 को पारित दंडादेश के अनुसार आजीवन कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया है ।

2. मृतक मोहम्मद मुतीउर्रहमान की पत्नी अजीमा खातून, ग्राम- रामखेतारी, पुलिस थाना- राजनगर, जिला- मधुबनी ने तारीख 15 जुलाई, 2009 को एक लिखित रिपोर्ट फाइल की जिसमें यह उल्लेख किया कि उसी दिन लगभग 2 बजे अपराहन में उसका पति अपने कमरे में भोजन कर रहा था, उनका पुत्र मोहम्मद नसीम रजा रहमानी **उर्फ** मुन्ना, आयु 30 वर्ष राजनगर से आया और जैसे ही वह वहां पहुंचा, अपने पिता को गालियां देने लगा । वह कमरे के अन्दर आया और उसने भीतर से कमरा बन्द कर लिया और अपने पिता पर हमला करने लगा, तब उसका पति अर्थात् मृतक मदद के लिए चिल्लाया । चीख-पुकार की आवाज सुनकर उसकी पुत्री रूही खातून दौड़कर आई और उसने देखा कि कमरे का दरवाजा भीतर से बंद है तब वह घर के बाहर आई और उसने चिल्लाते हुए कहा कि उसका भाई उसके पिता पर अन्दर से कमरा बन्द करके हमला कर रहा है जिस पर मोहल्ले के व्यक्ति जमा हो गए । उन्होंने किसी प्रकार दरवाजा खोलने का प्रयास किया । मोहम्मद नसीम रजा रहमानी **उर्फ** मुन्ना द्‌वारा दरवाजा खोले जाने पर सभी कमरे के अन्दर आ गए और अजीमा खातून ने अपने पति मोहम्मद मुतीउर्रहमान को खून से लथपथ बिस्तर पर पड़ा हुआ पाया । उसका पुत्र खन्ती से लैस था । उसने अपने पति के सिर में क्षति पाई । मृतक के सिर में से रक्त बह रहा था । उसके दोनों हाथ भी क्षतिग्रस्त थे । वह कराह रहा था । सभी व्यक्तियों ने उसे उठाया और राजनगर अस्पताल ले गए जहां से मृतक को डी. एम. सी. एच. के लिए भेज दिया । पड़ोसियों की

सहायता से उसने अपने पुत्र अर्थात् मोहम्मद नसीम रजा रहमानी को पकड़ लिया । पुलिस के पहुंचने पर पुलिस को लिखित शिकायत अभियुक्त के साथ प्रस्तुत की गई ।

3. पुलिस थाना राजनगर में मामला सं. 116/2009 दर्ज कराए जाने के पश्चात् अन्वेषण आरंभ किया गया और अन्वेषण के दौरान आहत मोहम्मद मुतीउर्रहमान की मृत्यु हो जाने के कारण दंड संहिता की धारा 302 जोड़ी गई जिसके अधीन अन्वेषण पूरा किए जाने के पश्चात् आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, विचारण किया गया और उसके पश्चात् पारित किए गए आदेश से व्यथित होकर वर्तमान अपील प्रस्तुत की गई है ।

4. साक्षियों की प्रतिपरीक्षा तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभिलिखित कथनों को दृष्टिगत करते हुए प्रतिरक्षा पक्षकथन में अभियोजन पक्षकथन से केवल इनकार किया गया है । यह भी अभिवाक् किया गया है कि उसकी बहिन रूही खातून को एक व्यक्ति से प्यार हो गया था जिसका विरोध वह और उसका पिता करता था और वह व्यक्ति अपीलार्थी की अनुपस्थिति का लाभ उठा रहा था, अपीलार्थी की गैर-मौजूदगी के कारण शारीरिक संबंध बनाने का प्रयास किया जिसका विरोध उसके पिता द्वारा किया गया और इस पृष्ठभूमि के आधार पर उसके पिता पर हमला किया गया । इसके पश्चात्, उसकी बहिन द्वारा मिथ्या के आधार पर परिस्थितियों में परिवर्तन किया गया और अपीलार्थी/अभियुक्त को इस मामले में आलिप्त किया गया और उस पर मिथ्या अभिकथन किए गए । इसके समर्थन में प्रतिरक्षा साक्षियों की परीक्षा कराई गई ।

5. अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन के समर्थन में कुल मिलाकर 8 अभियोजन साक्षियों की परीक्षा कराई जिनमें रूही खातून (अभि. सा. 1), मोहम्मद अफरोज आलम **उर्फ** पप्पू (अभि. सा. 2), मोहम्मद नाजिम (अभि. सा. 3), अंसारुल हक (अभि. सा. 4), मोहम्मद नईम (अभि. सा. 5), अजीमा खातून (अभि. सा. 6), सत्यनारायण सिंह (अभि. सा. 7) और डा. राम नन्द चौधरी (अभि. सा. 8) हैं और इसके साथ-साथ प्रदर्श-1,

प्रदर्श-2 (लिखित रिपोर्ट), औपचारिक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श-3), लिखित रपोर्ट पर किया गया पृष्ठांकन (प्रदर्श-4), रक्त रंजित खन्टी की बरामदगी (प्रदर्श-5), मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श-6) और शव परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श-7) भी प्रस्तुत की ।

6. प्रतिरक्षा पक्ष ने पांच साक्षियों की परीक्षा कराई जिनमें परवीन खातून (प्रतिरक्षा साक्षी 1), हमीदा खातून (प्रतिरक्षा साक्षी 2), अफरोज अंसारी (प्रतिरक्षा साक्षी 3), अब्दुल वहीद (प्रतिरक्षा साक्षी 4) और नूरी खातून (प्रतिरक्षा साक्षी 5) हैं ।

7. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने बहस के दौरान यह निवेदन किया है कि निर्धनता के कारण अपीलार्थी कतई भी ऐसी स्थिति में नहीं था कि वह अपने लिए कोई अधिवक्ता नियुक्त कर सके न ही विद्वान् निचले न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 304 के अनुसार विधिक सहायता उपलब्ध कराने पर ध्यान दिया और इस कारण यद्यपि अपीलार्थी को यह अवसर मिला है कि वह अभियोजन साक्षियों की प्रतिपरीक्षा कर सके किन्तु उसे विधि का ज्ञान न होने के कारण वह ऐसी परिस्थितियों पर प्रतिपरीक्षा के दौरान प्रश्न नहीं पूछ सका जिनका संबंध अपराध के अवयवों से होता है और इस प्रकार वह किसी विधिक विशेषज्ञ के रूप में अभियोजन पक्षकथन की कमियों को नहीं पकड़ सका । इसके साथ-साथ साक्षियों की हितबद्धता भी दिखाई देती है कि उन्होंने जार (जारकर्म करने वाले व्यक्ति) को बचाने का प्रयास किया है जिसका इस बात से कोई संबंध नहीं है कि अपीलार्थी द्वारा प्रतिपरीक्षा न किए जाने पर ऐसा हुआ है, परिणामस्वरूप, अपीलार्थी को अपनी प्रतिरक्षा का अवसर नहीं मिला है जिससे विचारण दूषित कहा जा सकता है ।

8. यह भी दलील दी गई है कि अभियोजन वृत्तांत की असंभाव्यता पर विचारण के दौरान विचार नहीं किया गया है । लिखित रिपोर्ट में इस बात को लेकर कोई भी प्रकटन नहीं किया गया है कि अपीलार्थी द्वारा ऐसा कोई प्रयास किया गया था कि वह स्वयं को उस कमरे से दूर रखे जिसे घटनास्थल दर्शाया गया है क्योंकि लिखित रिपोर्ट में यह प्रकटन किया गया है कि जब दरवाजा खोला गया था, अपीलार्थी/अभियुक्त खड़ा

हुआ पाया गया जिसके हाथ में रक्तरंजित खंटी थी और जिसे इत्तिलाकर्ता ने वहां मौजूद व्यक्तियों की सहायता से पकड़ लिया था और इसके पश्चात् उसे लिखित रिपोर्ट के साथ पुलिस के समक्ष पेश कर दिया गया था । विचारण के दौरान, अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 7) के साक्ष्य से यह स्पष्ट हो गया है कि अपीलार्थी को अभिकथित कमरे, जो कि घटनास्थल है, से गिरफ्तार नहीं किया गया था और न ही उसे वहां पर पुलिस के सुपुर्द किया गया था । इसी प्रकार, इस तथ्य के बावजूद कि किसी भी साक्षी ने यह कथन नहीं किया है कि अभियुक्त/अपीलार्थी रक्तरंजित खंटी फेंकने में कामयाब हो गया था, जो कि उसके घर से बरामद की गई है और अब इस संबंध में घटनास्थल की क्या बात की जाए । ये एक ऐसी महत्वपूर्ण परिस्थिति है जिससे अभियोजन वृत्तांत की विश्वसनीयता पर प्रश्न उठता है । इस परिस्थिति से यह पता चलता है कि मृतक पर अन्य किसी व्यक्ति द्वारा हमला किया गया है जिसे परिवार के सदस्यों ने बचा लिया है और इसके पश्चात् अपीलार्थी को अपराध में आलिप्त किया है ।

9. अब हम साक्षियों की स्थिति पर विचार करेंगे जिससे यह स्पष्ट होता है कि किसी भी साक्षी का नाम लिखित रिपोर्ट में नहीं लिखा गया है सिवाय रूही खातून, मोहम्मद नईम, मोहम्मद अफरोज, मोहम्मद नाजिम, मोहम्मद अंसारुल और मोहम्मद अमानत के, जिनके नाम लिखित रिपोर्ट के नीचे की ओर लिखे गए हैं जिन्हें प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुप्रमाणन साक्षी दिखाया गया है और तब तक इनमें से कुछ साक्षी आहत मोहम्मद मुतीउर्रहमान को राजनगर अस्पताल ले गए थे । इसके पश्चात् उसे डी. एम. सी. एच. ले जाया गया । विचारण के दौरान उन व्यक्तियों के नाम सामने नहीं आए हैं । यह भी दलील दी गई है कि जब उन साक्षियों के साक्ष्य की संवीक्षा लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श-2) इत्तिलाकर्ता (अभि. सा. 6) के साक्ष्य के साथ की गई, तब यह स्पष्ट हो गया कि घटना का कोई भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है ।

10. यह भी दलील दी गई है कि कुल मिलाकर अभियोजन पक्ष का यह कर्तव्य है कि वह अपना पक्षकथन तर्कसम्मत, विश्वसनीय और

विश्वासप्रद साक्षियों द्वारा साबित करे जो कि ऐसा करने में वह असफल रहा है । इसके पश्चात्, यह भी दलील दी गई है कि एक पूर्ववर्ती अवसर पर इस अपील की सुनवाई के दौरान न्यायालय ने अन्वेषण अधिकारी का साक्ष्य ऐसी रीति में अभिलिखित किया है कि जिससे साक्ष्य अधिनियम का अतिक्रमण होता है और इस पृष्ठभूमि के आधार पर तारीख 1 दिसंबर, 2016 के आदेश द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 391 के अधीन अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 7) की पुनः परीक्षा कराने का निदेश दिया गया जो तद्नुसार अभिलिखित किया गया । इस बात को दृष्टिगत करते हुए जैसा कि दलील दी गई है अभियोजन वृत्तांत की असलियत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

11. इसके अतिरिक्त, यह भी दलील दी गई है कि सबसे पहले अभियोजन पक्ष को अपना पक्षकथन साबित करना चाहिए और इसके पश्चात् प्रतिरक्षा साक्ष्य पर विचार किया जाना चाहिए । विद्वान् निचले न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय सिद्धांत को उलट दिया है और प्रतिरक्षा साक्षियों द्वारा साक्ष्य में जो कुछ कहा गया है उसी के आधार पर दोषसिद्धि का निर्णय अभिलिखित करते हुए दंडादेश पारित किया है । परिणामस्वरूप, यह आदेश अपास्त किए जाने योग्य है ।

12. यह भी दलील दी गई है कि अभियोजन पक्षकथन गलत तरीके से साबित करने पर भी दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध नहीं बनता है, विशेषकर इस तथ्य के आधार पर कि यह घटना विभाजन को लेकर घटित हुई है । किसी भी साक्षी ने यह कथन नहीं किया है कि उन्होंने अपीलार्थी/अभियुक्त को खंटी से लैस होकर कमरे में जाते हुए देखा था । इसीलिए, परिणाम कुछ भी हो, यह घटना अचानक घटित हुई है जिसको दंड संहिता की धारा 304, भाग-II के संघटक लागू होंगे और इसके लिए अपीलार्थी को पर्याप्त रूप से दंडित किया जा चुका है क्योंकि वह अभिकथित घटना की तारीख से अभिरक्षा में चल रहा है ।

13. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने **खत्री** बनाम **बिहार राज्य**[1],

---

[1] ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 928.

राम कुमार पाण्डेय बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1], **जगमोहन** बनाम **राजस्थान राज्य**[2], **बीर सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[3], **हुसैनआरा खातून** बनाम **गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना**[4], **रंजन द्विवेदी** बनाम **भारत संघ**[5], **भारत संघ** बनाम **अब्दुलकादर अब्दुलगनी मसमानी और अन्य**[6], **राजेश्वर प्रसाद मिश्रा** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[7], **ढाल सिंह देवांगन** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[8] और **मचिन्द्र** बनाम **सज्जन गलफा रणखम्भ**[9] वाले मामलों का अवलंब लिया ।

14. इसके प्रतिकूल, विद्वान् अपर लोक अभियोजक ने यह दलील दी है कि अभियुक्त की ओर से काउंसेल के मात्र पेश न होने से न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों पर किसी प्रकार का कोई भी फर्क नहीं पड़ेगा विशेषकर ऐसी स्थिति में जब अभियुक्त की ओर से कोई भी शिकायत न की गई हो और विचारण के दौरान उसने साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करके सक्रिय भूमिका निभाई हो । अभियुक्त ने स्वयं जोखिम उठाया है और इसलिए अब दोषसिद्धि के पश्चात् उसे प्रतिकूल प्रभाव का अभिवाक् करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । तद्नुसार, अपीलार्थी द्वारा किया गया यह निवेदन कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 304 की प्रक्रिया पूरी न किए जाने के कारण यह विचारण दूषित हो गया है, विधिक रूप से नहीं माना जा सकता ।

15. मामले की गुणता पर विचार करने पर यह दलील दी गई है कि लिखित रिपोर्ट घटना के कुछ घंटों के भीतर ही फाइल की गई थी । उस समय इत्तिलाकर्ता की मानसिक दशा पर विचार किया जाना चाहिए कि उसके पति पर उसके पुत्र द्वारा हमला किया गया है । एक ओर

---

1 ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1026.
2 1982 क्रिमिनल ला जर्नल 2314.
3 ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 59.
4 ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1369.
5 ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 624.
6 1985 क्रिमिनल ला जर्नल 324 (गुजरात).
7 ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1887.
8 ए. आई. आर. 2016 एस सी 4745.
9 (2017) 13 एस. सी. सी. 491 = ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 2397.

आहत उसका पति है दूसरी ओर आहत पर हमला करने वाला उसका पुत्र है । ऐसी स्थिति पर न्यायालय द्वारा सही परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त, यह भी दलील दी गई है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को सार्वभौमिक ग्रन्थ नहीं माना जा सकता जिसमें प्रत्येक क्षण का उल्लेख किया गया हो और ऐसे साक्षियों की किसी विशेष समय-बिन्दु पर मौजूदगी का वर्णन किया गया हो जिनका वहां पर आना-जाना स्वाभाविक हो । वास्तव में, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की महत्ता किसी अपराध के घटित होने के संबंध में पुलिस को सूचना देने तक है चाहे वह संज्ञेय अपराध हो या असंज्ञेय । यदि घटना संज्ञेय अपराध से संबंधित है तब ऐसी स्थिति में पुलिस अन्वेषण आरंभ करेगी और यदि वह किसी असंज्ञेय अपराध के बारे में है तब अन्वेषण मजिस्ट्रेट से अनुज्ञा प्राप्त करने के पश्चात् आरंभ किया जाता है ।

16. साक्षियों की स्थिति के संबंध में यह स्पष्ट है कि किसी भी साक्षी को नातेदारी के आधार पर विरोधी या हितबद्ध साक्षी नहीं कहा जा सकता है । इसके अतिरिक्त, यह घटना घर के अन्दर घटित हुई है, इसलिए नैसर्गिक साक्षी परिवार के सदस्य अर्थात् बहिन (अभि. सा. 1) और माता (अभि. सा. 6) हैं । यदि इन साक्षियों के साक्ष्य की समुचित रूप से संवीक्षा की जाए तब पता चलता है कि इन साक्षियों ने अभियोजन पक्षकथन का समर्थन किया है और प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य से उनके साक्ष्य का और अधिक समर्थन होता है । यह भी दलील दी गई है कि साक्षियों के साक्ष्य में कुछ असंगतता या अतिश्योक्ति दिखाई देती है जो कि साक्षियों के मानसिक संतुलन, सूझबझ, बुद्धिमत्ता और स्मरण-शक्ति को देखते हुए स्वाभाविक प्रतीत होती है क्योंकि ये साक्षी कईं वर्ष के बाद साक्ष्य देने न्यायालय में पेश हुए हैं । इन बातों को अनदेखा करते हुए जो कि अभियोजन पक्षकथन से बिल्कुल भी संबद्ध नहीं हैं बल्कि इन्हें अनावश्यक कहा जा सकता है, यह प्रतीत होता है कि इससे अभियोजन पक्षकथन पर कोई भी अनुचित प्रभाव नहीं पड़ता है और इस आधार पर यह अपील खारिज किए जाने के लिए उचित है ।

17. अभियुक्त/अपीलार्थी द्वारा यह दलील दी गई है कि उसे विधिक सहायता उपलब्ध नहीं कराई गई इसलिए उसका विचारण दूषित

हो जाता है जिस पर अपर लोक अभियोजक द्‌वारा यह दलील दी गई है कि अपीलार्थी ने स्वयं बहस करके अपनी प्रतिरक्षा की है इसलिए वह इस आधार पर निर्णय को चुनौती नहीं दे सकता कि उसे प्रतिरक्षा करने का अवसर नहीं दिया गया था । मामले में समुचित रूप से मूल्यांकन करने के लिए निम्न दो धाराएं उद्धृत की जा रही हैं :-

"**303. जिस व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही संस्थित की गई है उसका प्रतिरक्षा करने का अधिकार** – जो व्यक्ति दंड न्यायालय के समक्ष अपराध के लिए अभियुक्त है या जिसके विरुद्ध इस संहिता के अधीन कार्यवाही संस्थित की गई है, उसका यह अधिकार होगा कि उसकी पसंद के प्लीडर द्‌वारा उसकी प्रतिरक्षा की जाए ।

304. कुछ मामलों में अभियुक्त को राज्य के व्यय पर विधिक सहायता –

(1) जहां सेशन न्यायालय के समक्ष किसी विचारण में, अभियुक्त का प्रतिनिधित्व किसी प्लीडर द्‌वारा नहीं किया जाता है और जहां न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त के पास किसी प्लीडर को नियुक्त करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं हैं, वहां न्यायालय उसकी प्रतिरक्षा के लिए राज्य के व्यय पर प्लीडर उपलब्ध करेगा ।

(2) राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से उच्च न्यायालय -

(क) उपधारा (1) के अधीन प्रतिरक्षा के लिए प्लीडरों के चयन के ढंग का,

(ख) ऐसे प्लीडरों को न्यायालयों द्‌वारा दी जाने वाली सुविधाओं का,

(ग) ऐसे प्लीडरों को सरकार द्‌वारा संज्ञेय फीसों का और साधारणतः उपधारा (1) के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए,

उपबंध करने वाले नियम बना सकता है ।

(3) राज्य सरकार अधिसूचना द्‌वारा यह निदेश दे सकती

है कि उस तारीख से, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाए, उपधारा (1) और (2) के उपबंध राज्य के अन्य न्यायालयों के समक्ष किसी वर्ग के विचारणों के संबंध में वैसे ही लागू होंगे जैसे वे सेशन न्यायालय के समक्ष विचारणों के संबंध में लागू होते हैं ।"

18. यहां भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 21 को उद्धृत करना उचित होगा जो निम्न प्रकार है :-

"21. **प्राण की संरक्षा और वैयक्तिक स्वतंत्रता** - किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं ।"

19. एक पूर्ववर्ती अवसर पर इन धाराओं को कोई महत्व नहीं दिया गया है किन्तु **हुसैनआरा खातून** बनाम **गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना**[1] वाले मामले में उपरोक्त दोनों उपबंधों का समुचित रूप से निर्वचन करते हुए महत्व दिया गया है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **हुसैनआरा खातून** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त को अपनी ओर से किसी विधि व्यवसायी को नियुक्त करने का समुचित अवसर दिया जाना चाहिए और ऐसा न किए जाने पर विचारण की विधिमान्यता प्रभावित होगी । यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि संविधान के अनुच्छेद 39-क के निबंधनों में राज्य अभियुक्त को निःशुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराने के लिए बाध्य है और ऐसा न किए जाने पर संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण होगा ::-

"6. ऐसे बहुत से विचाराणाधीन बंदी हैं जो जमानतीय अपराध से आरोपित हैं किन्तु अभी तक कारावास में हैं जिसका संभवतः यह कारण हो सकता है कि उनकी ओर से कोई भी जमानत आवेदन फाइल नहीं किया गया है या वे इतने निर्धन हैं कि अपनी जमानत न करा सकें । यह सामान्य बात है कि विचारणाधीन बंदी, जो मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं, उन्हें जमानत पर छोड़े जाने संबंधी अपने अधिकार की जानकारी ही नहीं है और

---

[1] ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1369.

अपनी निर्धनता के कारण वे अपनी ओर से कोई अधिवक्ता भी नियुक्त नहीं कर सकते हैं जो उनकी मजिस्ट्रेट के न्यायालय से जमानत करवाकर उन्हें उन्मुक्त करवा सके । कभी-कभी मजिस्ट्रेट विचारणाधीन बन्दियों को उन्मुक्त करने से इनकार कर देता है किन्तु प्रतिभूति के आधार पर जमानत कराने के लिए कहता है जो कि उन बन्दियों की निर्धनता के कारण वे जमानती प्रस्तुत नहीं कर पाते हैं, अतः विचारण के दौरान ऐसे बन्दियों के कारावास से जमानत पर बाहर आने की संभावना भी समाप्त हो जाती है । इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से निपटने के लिए समुचित और सुगठित विधिक सेवा कार्यक्रम किया जाना आवश्यक है किन्तु अभी तक इस दिशा में कुछ भी होता दिखाई नहीं देता है । हमें निर्धन व्यक्तियों को मिलने वाली विधिक सहायता का ऐसा लाभ दिया जाना संभव दिखाई नहीं देता है कि उनके साथ होने वाले अन्याय को रोका जा सके और उन्हें उनके संवैधानिक और कानूनी अधिकार उपलब्ध कराए जा सके और ऐसा तभी संभव हो सकता है जब राष्ट्र स्तर पर ऐसे व्यक्तियों को निःशुल्क विधिक सेवा उपलब्ध कराई जाए । यह सुस्थापित है कि जैसा कि मेनका गांधी **बनाम** भारत संघ [(1978) 1 एस. सी. सी. 248 = ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 597] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चय के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उपबंधित है कि किसी भी व्यक्ति को उसके प्राण या स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा सिवाय विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के, इतना पर्याप्त नहीं है कि विधि द्वारा उपबंधित प्रक्रिया से मिलती जुलती कोई व्यवस्था तैयार की जाए बल्कि ऐसी प्रक्रिया होनी चाहिए जिसके अधीन किसी भी व्यक्ति को यदि उसके प्राण या स्वतंत्रता से वंचित किया जाता है तो वह युक्तियुक्त, निष्पक्ष और न्यायोचित होना चाहिए । ऐसी प्रक्रिया को संभवतः युक्तियुक्त रूप से निष्पक्ष और न्यायोचित नहीं कहा जा सकता जिसके अनुसार ऐसे व्यक्ति को विधिक सेवा उपलब्ध न कराई जा सके जो इतना गरीब हो कि अपने लिए अधिवक्ता नियुक्त न कर सके और उसे बिना किसी विधिक सहायता के विचारण की प्रक्रिया से गुजरना पड़े ।

एक बन्दी को बन्दीगृह से न्याय प्रक्रिया द्वारा स्वतंत्र होने के लिए युक्तियुक्त, निष्पक्ष और न्यायोचित प्रक्रिया का आवश्यक संघटक यह है कि उसे विधिक सहायता मिलनी ही चाहिए । इस न्यायालय ने एम. एच. हॉस्कोट **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [(1978) 3 एस. सी. सी. 544 = ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1548] वाले मामले में इस प्रकार मत व्यक्त किया गया है – न्यायालय द्वारा किया गया न्याय, प्रक्रियात्मक जटिलताओं, दलीलों और साक्ष्य का आलोचनात्मक परिशीलन व्यवसायिक दक्षता पर निर्भर करता है और एक पक्ष के दक्ष न होने के कारण विधि के अधीन समान रूप से न्याय नहीं हो पाता है । हमारे न्यायालय एंग्लो-अमेरिकन पद्धति पर बने हुए हैं और हमारी न्यायिक प्रक्रिया जो आत्मीय विधि तकनीक से बनी है, विधि के अधीन समान रूप से न्याय करने के लिए वकीलों का होना आवश्यक है । निर्धन और जरुरतमंद को निःशुल्क विधिक सेवा देना किसी भी युक्तियुक्त, निष्पक्ष और न्यायोचित प्रक्रिया का एक आवश्यक भाग है । इस मत के समर्थन में न्यायाधीशों और ज्यूरिष्टों के प्राधिकृत निर्णयों को कोट करना आवश्यक नहीं है कि वकील की सेवा लिए बिना यही माना जाएगा कि अभियुक्त के साथ युक्तियुक्त, निष्पक्ष और न्यायोचित प्रक्रिया नहीं अपनाई गई है । गिडियन **बनाम** वेन राइट [(1963) 372 यू. एस. 335] वाले मामले में न्यायमूर्ति ब्लेक ने निम्न मत व्यक्त किया है –

> "केवल उन नजीरों के आधार पर ही नहीं अपितु तर्कणा के आधार पर भी यह अपेक्षित है कि हमारे दांडिक न्याय के विरोधी तंत्र में जब कोई इतना निर्धन व्यक्ति न्यायालय में आता है कि वह विचारण के लिए किसी वकील को अपने लिए नियुक्त न कर सके तब यह माना जाएगा कि उसका निष्पक्ष विचारण नहीं किया गया है । यह हमें एक सच्चाई ही प्रतीत होती है । राज्य और परिसंघीय दोनों सरकारें अभियुक्तों को अपनी प्रतिरक्षा की व्यवस्था के लिए समुचित रूप से धन व्यय करती हैं । अभियोजन करने के लिए हर जगह वकील दिखाई देते हैं जो सभ्य समाज की संरक्षा के लिए आवश्यक

हैं । इसी प्रकार, कुछ ऐसे प्रतिवादी और अभियुक्त हैं जो अपनी प्रतिरक्षा के लिए अच्छे वकील नियुक्त नहीं कर सकते । सरकार अभियोजन के लिए वकील उपलब्ध कराती है और पैसे वाले अभियुक्त भी अपने लिए वकील नियुक्त कर लेते हैं और इन बातों से यह विश्वास बन जाता है कि दांडिक न्यायालयों में वकीलों का नियुक्त किया जाना एक बड़ी आवश्यकता है न कि कोई एश्वर्य । किसी अपराध से आरोपित व्यक्ति को विधिक सहायता दिया जाना कुछ देशों में मूल अधिकार नहीं है किन्तु हमारे देश में है । आरंभ से ही, हमारे संविधान के राज्यीय और राष्ट्रीय उपबंधों तथा अन्य विधियों के अन्तर्गत प्रक्रियात्मक और सारभूत सुरक्षोपायों पर विशेष बल दिया गया है ताकि ऐसे निष्पक्ष न्यायालयों के समक्ष निष्पक्ष विचारण किए जा सके जिनमें प्रत्येक प्रतिवादी विधि की दृष्टि से समान माना जाता है । यह सुविचार तब तक प्रभावी नहीं हो सकता जब तक कि किसी अपराध से आरोपित व्यक्ति को शिकायतकर्ता का मुकाबला करने के लिए वकील की सहायता उपलब्ध न कराई जाए ।

निःशुल्क विधिक सेवा का सिद्धांत निष्पक्ष प्रक्रिया के आवश्यक तत्व के रूप में न्यायमूर्ति डगलस के जॉन रिचर्ड आर्जरसिंगर **बनाम** रेमण्ड हैमलिन [(1972) 407 यू. एस. 25] वाले निर्णय के निम्न पैरा में है । "सुने जाने का अधिकार" बहुत से मामलों में कोई फायदा नहीं पहुंचाता है यदि मामले की सुनवाई पक्षकार के काउंसेल पक्षकार के काउंसेल के माध्यम से न की जाए । एक बुद्धिमान और शिक्षित आम आदमी को भी विधि की जटिलताओं की समझ कम होती है और कभी-कभी उसकी समझ बिल्कुल काम नहीं करती यदि वह किसी अपराध से आरोपित है, आमतौर पर वह यह नहीं समझ पाता है कि उस पर लगाया गया आरोप सही है या गलत । उसे साक्ष्य संबंधी विधि की जानकारी नहीं होती है । काउंसेल की सहायता के बिना उस पर समुचित रूप से आरोप

नहीं लगाया जा सकता और इस प्रकार की गई दोषसिद्धि अधूरे साक्ष्य पर आधारित होगी या ऐसे साक्ष्य पर आधारित होगी जो मुद्दे के साथ असंगत है या फिर अग्राह्य है । ऐसे व्यक्ति में अपनी प्रतिरक्षा समुचित रूप से तैयार करने के लिए न तो दक्षता होती है और न ही ज्ञान, भले ही वह कितना भी समझदार क्यों न हो । उसे अपने विरुद्ध चल रही कार्यवाहियों के दौरान हर कदम पर एक काउंसेल द्वारा किए गए मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है । ऐसी सहायता के बिना भले ही वह दोषी न हो, उस पर दोषसिद्धि का भय बना रहता है क्योंकि वह अपनी निर्दोषिता साबित करना नहीं जानता । यदि एक बुद्धिमान व्यक्ति के बारे में ऐसा कहना सही है तो किसी अनभिज्ञ, अशिक्षित या कम बुद्धि वाले व्यक्ति के संबंध में कितना सटीक होगा ।

किसी अपराध से आरोपित व्यक्ति को विधिक सहायता उपलब्ध कराना कुछ देशा में मूल अधिकार न हो और निष्पक्ष विचारण के लिए आवश्यक न हो किन्तु हमारे देश में यह आवश्यक है । आरंभ से ही हमारे राज्यीय और राष्ट्रीय संविधानों तथा विधि के अधीन उस पर अधिक बल दिया गया है कि निष्पक्ष न्यायालयों के समक्ष निष्पक्ष विचारण सुनिश्चित किए जाने के लिए प्रक्रियात्मक और सारभूत सुरक्षोपाय किए जाएं ताकि प्रत्येक प्रतिवादी के साथ विधि की दृष्टि से समान व्यवहार किया जाए । यदि किसी अपराध से आशयित असहाय व्यक्ति को शिकायतकर्ता का सामना किसी वकील की सहायता लिए बिना करना पड़े तो यह माना जाएगा कि इस महत्वपूर्ण सिद्धांत का पालन नहीं हुआ । पोवेल और गिडियन दोनों ही व्यक्ति अपराधों में अंतर्वलित थे । किन्तु उनके द्वारा दिए गए तर्क-आधार किसी भी ऐसे दांडिक विचारण के लिए सुसंगत हैं जिसमें अभियुक्त को उसकी स्वतंत्रता से वंचित किया जा रहा हो ।

………….. न्यायालय को उस संभावित दंडादेश पर विचार करना चाहिए जो दोषसिद्ध किए जाने के पश्चात् दिया जाएगा ।

उसके संभावित परिणाम जितने गंभीर होंगे उतनी ही संभाव्यता इस बात की बढ़ जाती है कि (अभियुक्त की ओर से) वकील नियुक्त किया जाना चाहिए ... । न्यायालय को प्रत्येक मामले के अपने विशिष्ट कारकों पर विचार करना चाहिए । निःसंदेह, ऐसा करना कठिन होगा । अपना पक्षकथन न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु किसी प्रतिवादी का समक्ष होना एक सुसंगत कारक है । संदेह, ऐसी प्रत्याशा करना अत्यंत कठिन होगा । अपना पक्षकथन ठीक प्रकार प्रस्तुत करने से संबंधित प्रतिवादी की योग्यता एक सुसंगत कारक है ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

7. सांविधानिक मूल निदेशक तत्वों से संबंधित संविधान का अनुच्छेद 39-क का इस प्रकार है –

"39-क. **समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता** – राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह, विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

इस अनुच्छेद के अधीन इस बात पर बल दिया गया है कि निःशुल्क विधिक सहायता, "युक्तियुक्त, निष्पक्ष और उचित प्रक्रिया" का एक महत्वपूर्ण तत्व है क्योंकि इसके बिना ऐसा व्यक्ति जो आर्थिक या अन्य अशक्तता से पीड़ित हो, न्याय का अवसर पाने से वंचित हो जाएगा । अतः, निःशुल्क विधिक सहायता पाने का अधिकार युक्तियुक्त, निष्पक्ष और उचित प्रक्रिया का आवश्यक संघटक ऐसे व्यक्ति के लिए है

जो अपराध से आरोपित है और यह अधिकार अनुच्छेद 21 की गारंटी के अधीन अन्तर्निहित है । यह ऐसे प्रत्येक अभियुक्त का सांविधानिक अधिकार है जो निर्धनता, दरिद्रावस्था या सम्पर्क-वर्जित स्थित जैसे कारणों के आधार पर अपने लिए वकील नियुक्त करने और विधिक सेवा लेने योग्य नहीं हैं और यदि मामले की परिस्थितियों हेतु और न्याय की जीत के लिए ऐसा आवश्यक हो तब राज्य के लिए यह आज्ञापक है कि वह अभियुक्त को वकील उपलब्ध कराए परन्तु ऐसा तब होगा जब वह अभियुक्त वकील की व्यवस्था कराए जाने पर आक्षेप न करे । अतः हम यह निदेश देते हैं कि रिमांड की अगली तारीख पर जब विचारणाधीन कैदी, जिन पर जमानतीय अपराध का आरोप है, मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं, तब राज्य सरकार अपने खर्चे पर ऐसे कैदियों को वकील उपलब्ध कराएगी ताकि उनकी जमानत के लिए आवेदन किया जा सके परन्तु ऐसा तब हो सकता है जब वकील की व्यवस्था कराए जाने पर ऐसे विचारणाधीन कैदियों की ओर से कोई आक्षेप न किया जाए, तब मजिस्ट्रेट तारीख 12 फरवरी, 1979 को पारित किए गए हमारे निर्णय में दी गई मार्गदर्शक पंक्तियों के अनुसरण में उन जमानत आवेदनों का निपटारा करेगा । राज्य सरकार इस आदेश के अनुपालन की रिपोर्ट आज से छह सप्ताह के भीतर उच्च न्यायालय को भेजेगा ।

8. * * * *

9. हम इस पर भी चर्चा करना चाहेंगे कि भारत सरकार तथा राज्य सरकारें भी सक्रिय और बोधगम्य विधिक सेवा कार्यक्रम पर विचार करें ताकि आम आदमी को न्याय मिल सके । दुर्भाग्यवश, आजकल हमारे देश में निर्धन व्यक्ति का महत्व न्याय तंत्र में कम हो गया है जिसका यह परिणाम है कि उनका विश्वास न्यायतंत्र की क्षमता को लेकर कम हो रहा है क्योंकि उससे उनके जीवन में परिवर्तन नहीं आ रहे हैं और उन्हें न्याय नहीं मिल पा रहा है ।

विधिक तंत्र के प्रति निर्धन व्यक्ति के दायित्व अधिक और अधिकार कम हैं । वे हमेशा यही देखते हैं कि "विधि निर्धन व्यक्तियों के लिए है" न कि "विधि निर्धन व्यक्तियों की है" । ऐसे व्यक्तियों को विधि अस्पष्ट और नकारात्मक दिखाई देती है न कि ऐसी सकारात्मक और निर्माणकारी जिससे उनकी आर्थिक अवस्था और जीवन शैली में सुधार आ सके और उन्हें उनके अधिकार और फायदे प्रदत्त किए जा सके । परिणामस्वरूप, विधिक तंत्र ने कमजोर वर्ग की दृष्टि में अपनी विश्वसनीयता खो दी है । अतः, यह आवश्यक है कि हमें विधिक तंत्र में समान न्याय की भावना प्रविष्ट करनी होगी और यह केवल गतिशील और सक्रिया विधिक सेवा से ही किया जा सकता है । हम सरकार का ध्यान न्यायमूर्ति ब्रेनान के इन प्रसिद्ध शब्दों की ओर दिलाना चाहेंगे, "मानव हृदय में अन्याय के दर्द से बड़े किसी दर्द का अहसास नहीं हो सकता । बीमारी का दर्द इसके बाद आता है । यदि हम अन्याय करेंगे तो इससे प्रत्येक वस्तु के साथ अन्याय होगा । जब कोई धनवान व्यक्ति विधि का लाभ ले सकता है और निर्धन इसका लाभ न ले सके, तब यह कहा जा सकता है कि धनाभाव के कारण निर्धन व्यक्ति की पहुंच विधि तक नहीं हो पाती है, इससे लोकतंत्र को घोर खतरा है जो कि कोई काल्पनिक बात नहीं है क्योंकि लोकतंत्र का अस्तित्व न्याय के प्रभावी बने रहने पर ही आधारित है जिसके अधीन प्रत्येक नागरिक का यह विश्वास बने कि उसके साथ निष्पक्ष व्यवहार किया जाएगा ।"

हम वर्षों पूर्व समृद्ध देश अर्थात् अमरीका के संबंध में विद्वान् लीमेन अबोट द्वारा कहे गए शब्दों का उल्लेख करना चाहेंगे :–

"यदि कभी ऐसा समय आ जाए कि केवल धनी व्यक्ति ही कानून का लाभ अनुचित एश्वर्य के रूप में ले सके और निर्धन व्यक्ति, जिसे कानून की अधिक आवश्यकता है लाभ न ले सके और जब केवल समृद्ध व्यक्ति के न्यायालय तक पहुंच सके तब ऐसी स्थिति में क्रांति का सृजन होता है और लोगों के हाथों में आंदोलन की ज्वाला आ जाती है और उनका यह आंदोलन लगभग न्यायोचित ही कहलाएगा ।"

हम भारत सरकार और राज्य सरकारों से घोर आग्रह करते हैं कि अब समय आ गया है कि देश में व्यापक विधिक सेवा कार्यक्रम आरंभ किया जाए । यह संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन समान न्याय और अनुच्छेद 21 के अधीन प्रदत्त प्राण का अधिकार और स्वतंत्रता का मात्र आदेश नहीं है अपितु अनुच्छेद 39-क के अधीन अंगीकृत सांविधानिक निदेश का प्रभाव है ।

20. **रंजन द्विवेदी** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में स्वयं याची उच्चतम न्यायालय का एक अधिवक्ता (एडवोकेट-ऑन-रिकार्ड) है और साथ ही वह समस्तीपुर बम विस्फोट वाले जाने-माने मामले में अभियुक्त भी है, इस निर्णय का सुसंगत निम्न प्रकार है कोट किया जा रहा है :–

> "4. रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान न्यायालय ने अपने तारीख 4 जून, 1981 के अन्तरिम आदेश द्वारा इस तथ्य पर विचार करते हुए कि याची एक व्यवसायी अधिवक्ता है और लम्बे समय से चल रही विचारण की प्रक्रिया से जूझ रहा है, यह निदेश दिया कि राज्य को उसकी इस संबंध में सहायता करनी चाहिए कि वह अपनी प्रतिरक्षा कर सके और अपने काउंसेल की फीस का भुगतान कर सके । न्यायालय ने यह निदेश दिया कि याची उसकी ओर से पेश होने वाले काउंसेल का नाम सेशन न्यायालय को सूचित करेगा और साथ ही यह भी निदेश दिया कि रिट याचिका के परिणाम पर निर्भर करते हुए उसके काउंसेल को उसकी कुल फीस का आंकलन करने के पश्चात् राज्य उसके संदाय की व्यवस्था करेगा । न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती आदेश में उपान्तरण करते हुए तारीख 18 अगस्त, 1981 को पश्चात्वर्ती आदेश पारित किया कि याची की ओर से हाजिर होने वाले ज्येष्ठ काउंसेल को 500/- रुपए प्रतिदिन और कनिष्ठ काउंसेल को 250/- रुपए प्रतिदिन की दर से संदाय किया जाएगा ।
>
> 5. सुनवाई के दौरान याची के काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई कि विचारण के दौरान याची की ओर से न्यायमित्र के रूप में

[1] ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 624.

हाजिर होने वाले काउंसेल को युक्तियुक्त रकम का संदाय किए जाने के लिए न्यायालय द्वारा पारित अन्तरिम आदेश के अनुसरण में उचित निदेश दिया जाए । दूसरी ओर, विद्वान् अपर महासालिसिटर ने न्यायालय द्वारा दिए गए निदेशों में एक गंभीर अपवाद रखा है और यह प्रतिवाद किया है कि याची को इसका कोई अधिकार नहीं है कि उसे राज्य द्वारा कोई वकील उपलब्ध कराया जाए और न ही राज्य की ऐसी कोई बाध्यता है कि वह याची को उसकी पसंद का वकील उपलब्ध कराने के लिए उसकी वित्तीय सहायता करे । विद्वान् अपर महासालिसीटर के अनुसार याची को चाहिए कि वह विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 304 की उपधारा (1) के अधीन निःशुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराने के लिए आवेदन करे और विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश का यह कर्त्तव्य है कि अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर अपना यह समाधान करे कि याची के पास अपने लिए काउंसेल नियुक्त करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं हैं । यह निवेदन किया गया है कि इस शर्त के पूरा होने पर यह निदेश दिया जा सकता है कि राज्य के खर्चे पर याची को उसकी प्रतिरक्षा के लिए काउंसेल उपलब्ध कराया जाए । तद्नुसार, विद्वान् अपर महासालिसिटर ने यह प्रतिवाद किया है कि संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन कोई भी याचिका चलने योग्य नहीं है ।

6. संविधान के अनुच्छेद 39-क में प्रतिष्ठापित राज्य की नीति के निदेशक तत्व के प्रवर्तन के लिए यह याचिका फाइल की गई है, अनुच्छेद 39-क निम्न प्रकार है –

> "39-क. **समान न्याय और निशुल्क विधिक सहायता –** राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह, विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान

या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा ।"

7. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि याची इस बात के लिए हकदार हो कि उसे उसकी पसंद का काउंसेल, उस फीस के आधार पर जो राज्य की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेलों को दी जाती है, नियुक्त कराने के लिए वित्तीय सहायता भारत संघ के अध्यादेश द्वारा संविधान के अनुच्छेद 39-क के अधीन प्रतिष्ठापित निदेशक तत्व के प्रवर्तन के लिए परमादेश मंजूर किया जाए । जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 39-क के निबंधनों से स्पष्ट है, समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता दिए जाने का सामाजिक उद्देश्य, समुचित विधान-मंडल द्वारा या निःशुल्क विधिक सहायता के लिए बनाई गई योजनाओं द्वारा कार्यान्वित किया जाना चाहिए । याची के लिए यदि कोई उपचार है तो वह संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन नहीं अपितु दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 304 की उपधारा (1) के अधीन विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष आवेदन करना है ।

8. जनार्द्धन रेड्डी और अन्य **बनाम** हैदराबाद राज्य और अन्य ए. आई. आर. 1951 एस. सी. 217 वाले मामले में संविधान के अनुच्छेद 22(1) के निर्वचन पर इस न्यायालय द्वारा अभियुक्त यह पारंपरिक दृष्टिकोण कि 'अपनी पसंद के विधि व्यवसायी द्वारा प्रतिरक्षा का अधिकार' से केवल यह अभिप्रेत है कि अभियुक्त अपने लिए वकील की नियुक्ति कर सकता है और यह अधिकार उसे इस आत्यंतिक अधिकार की गारंटी नहीं देता है कि राज्य उसके लिए वकील की व्यवस्था करे । उस दृष्टिकोण में संविधान (42वां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा अनुच्छेद 39-क में सम्मिलित राज्य की नीति के निदेशक तत्वों को पुरःस्थापित करके और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 304 की उपधारा (1) का अधिनियमन करके अब परिवर्तन कर दिया गया है । इसी मामले में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि 'सम्यक् प्रक्रिया' के

सिद्धांत पर आधारित पावेल बनाम अलबामा के मामले में प्रतिपादित अमेरिकी नियम भारत में लागू नहीं है और यह कि अनुच्छेद 22 (1) के अधीन अभियुक्त को यह आत्यंतिक अधिकार नहीं दिया गया है कि राज्य उसके लिए वकील की व्यवस्था करेगा। इस न्यायालय द्वारा मेनका गांधी **बनाम** भारत संघ (1978) 1 एस. सी. सी. 248 = ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 597, ई. पी. रायप्पा **बनाम** तमिलनाडू राज्य ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 555, आर. डी. शेट्टी **बनाम** भारत का अन्तर्राष्ट्रीय विमानपत्तन प्राधिकरण और अन्य ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1628 वाले मामलों के विनिश्चयों को अपनाकर इस अवस्थिति में निश्चित परिवर्तन हुआ है । **मेनका गांधी** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि नैसर्गिक न्याय के अनुपालन की अपेक्षा अनुच्छेद 21 में विवक्षित है और यह कि यदि कोई दंड विधि उसे प्रभावित करने से पूर्व सुने जाने की अपेक्षा अधिकथित नहीं करती तो भी ऐसी अपेक्षा न्यायालय द्वारा विवक्षित होगी ताकि विधि द्वारा विहित प्रक्रिया युक्तियुक्त हो सके और वह 'मनमानी प्रक्रिया न हो जाए । वह प्रक्रिया जो मनमानी, अन्यायपूर्ण या काल्पनिक' हो उसे सर्वथा 'प्रक्रिया' नहीं माना जा सकता । वह प्रक्रिया जो युक्तियुक्त हो, अनुच्छेद 14 के अनुरूप नहीं कही जा सकती क्योंकि युक्तियुक्तता की धारणा उस अनुच्छेद में व्याप्त है और मनमानापन अनुच्छेद 14 के अधीन गारंटीकृत समानता के विपरीत है । इन विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए ऐसा कहना कठिन है कि 'सम्यक् प्रक्रिया' के अमेरीकी सिद्धांत का सार अनुच्छेद 21 के रूढ़िवादी मूल-पाठ के भीतर अभी भी नहीं आया है ।

9. यद्यपि, पूर्वतर विनिश्चयों में इस न्यायालय ने निदेशक तत्वों पर इस कारण से कम ध्यान दिया है कि न्यायालयों को उनसे कोई सरोकार नहीं था क्योंकि इन पर मूल अधिकारों के समान न तो न्यायालयों में विचार किया जा सकता था और न ही

ये उनकी तरह प्रवर्तनीय थे तथापि, पश्चात्वर्ती विनिश्यों में निदेशक तत्वों के संबंध में न्यायालय के कर्तव्यों पर बल दिया गया है । यह बात केशवानन्द भारती **बनाम** भारत संघ (1973) 4 एस. सी. सी. 225 = ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 1461 वाले मामले में अपने चरम बिन्दू पर पहुंची जिसमें कतिपय मोटी-मोटी प्रतिपादनाएं अधिकथित की गईं । उनमें से एक यह है कि निदेशक तत्वों और मूल अधिकारों के बीच कोई असंगति नहीं है क्योंकि ये दोनों ही सामाजिक क्रांति लाने और कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने, जो कि उद्देशिका में परिकल्पित है, के संमान उद्देशक को प्राप्त करने में एक दूसरे की पूर्ति करते हैं । अतः, न्यायालयों की यह जिम्मेदारी है कि वे संविधान का ऐसा निर्वचन करें जिससे निदेशक तत्वों का क्रियान्वयन सुनिश्चित हो सके और वैयक्तिक अधिकारों के साथ निदेशक तत्वों के मूल में सामाजिक उद्देश्यों को संगत बनाया जा सके । अनुच्छेद 39(क) में दिया गया आदेश मुख्य रूप से विधान-मण्डल और कार्यपालिका के लिए है, किन्तु जहां तक न्यायालय संविधान के अन्तरालों के भीतर न्यायिक विधि बनाने या अपने समक्ष कानूनों के अर्थान्यवन के कार्य में लीन होते हैं, न्यायालय भी इस आदेश द्वारा आबद्ध हैं ।

10. अनुच्छेद 21 के साथ पठित अनुच्छेद 39(क) में दिए गए निदेशक तत्वों को इस न्याय के प्रशासन में कतिपय मार्गदर्शनों पर चलने के लिए एम. एच. होसकोट **बनाम** महाराष्ट्र राज्य (1978) 3 एस. सी. सी. 544 = ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1548, हरियाणा राज्य **बनाम** दर्शनादेवी और अन्य ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 855, हुसैनआरा खातून और अन्य **बनाम** गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1369 वाले मामलों में मान्यता दी है । इनमें से एक यह है कि जब अभियुक्त अकिंचनता या ऐसी ही परिस्थितियों के कारण काउंसेल की नियुक्ति नहीं कर सकता है तो जब तक राज्य उसे अपनी प्रतीक्षा के लिए उस वकील की नियुक्ति जिसकी नियुक्ति पर

अभियुक्त कोई आपत्ति नहीं करता, करने के लिए निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान नहीं करता, तब तक वह विचारण दूषित कहलाएगा । इस संबंध में, **पावेल** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायाधिपति सदरलैण्ड के हृद्यस्पर्शी शब्द गूंजते हैं । न्यायाधिपति सदरलैण्ड ने लिखा है कि 'काउंसेल की सहायता का अधिकार मूल प्रकृति का है' । इस देश (अर्थात् संयुक्त राज्य अमेरिका) में 'ऐतिहासिक रूप से और व्यवहार में' किसी सुनवाई में 'काउंसेल की सहायता के अधिकार को, जब उसकी वांछा की जाए, अधिकार जताने वाले पक्षकार द्वारा उसकी व्यवस्था करने के लिए' सदा सम्मिलित किया गया है । न्यायाधिपति सदरलैण्ड ने आगे चलकर यह बताया कि ऐसा क्यों होना चाहिए –

> 'बहुत से ऐसे मामले हैं जिनमें काउंसेल द्वारा 'सुने जाने का अधिकार' नहीं होगा, तो सुने जाने के अधिकार का महत्व नाममात्र रह जाएगा । कई बार बुद्धिमान और शिक्षित अविशेषज्ञ व्यक्ति को भी विधि का बहुत कम या नितान्त ज्ञान नहीं होता । यदि उस पर किसी अपराध का आरोप लगता है तो वह साधारणतया अपने लिए यह अवधारण करने में असमर्थ होता है कि अभियोग साधार है या निराधार है । उसे साक्ष्य के नियमों का पता नहीं होता । यदि वह काउंसेल की सहायता के बिना रह जाता है तो हो सकता है कि बिना किसी उचित आरोप के ही उसका विचारण कर लिया जाए और उसे अक्षम साक्ष्य या ऐसे साक्ष्य, जो उस मुद्दे से असंगत हों या अन्यथा अननुज्ञेय हों, पर दोषसिद्ध ठहरा दिया जाए । उसके पास पूर्ण निपुणता और ज्ञान होते हुए भी, अपनी प्रतिरक्षा करने में इन दोनों बातों की पर्याप्त रूप से कमी हो सकती है । उसे अपने विरुद्ध कार्यवाहियों में हर कदम पर काउंसेल के मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है । इसके बिना, यद्यपि वह दोषी न भी हो, उसे दोषसिद्धि के भय का सामना करना पड़ता है क्योंकि उसे यह नहीं पता कि वह अपनी निर्दोषिता कैसे सिद्ध करे ।'

किन्तु उसने अपनी बात यहीं समाप्त नहीं की । यदि अभियुक्त, अवसर दिए जाने पर भी, काउंसेल की सहायता प्राप्त नहीं कर पाता तो 14वें संशोधन में 'सम्यक् प्रक्रिया' खण्ड से यह अपेक्षित है कि विचारण न्यायालय 'काउंसेल की प्रभावी नियुक्ति करे' । यह एक नई विधि थी और इसीलिए यह स्वाभाविक था कि न्यायालय नए सिद्धांत का अनुसरण करने के लिए ध्यानपूर्वक निम्नलिखित परिसीमाएं तय करे –

> 'हमें यह अवधारण करने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसा ही अन्य दांडिक अभियोजनों में या अन्य परिस्थितियों के अधीन रहते हुए होगा या नहीं । जिस बात का विनिश्चय किए जाने की आवश्यकता है, और जैसा कि हम विनिश्चय भी करेंगे, वह यह है कि मृत्यु से दंडनीय मामले में जहां प्रतिवादी काउंसेल की नियुक्ति नहीं कर सकता है और अपनी अज्ञानता, मन्दबुद्धि, निरक्षरता या इसी प्रकार की अन्य बातों के कारण अपनी प्रतिरक्षा करने में काफी असमर्थ है वहां न्यायालय का यह कर्तव्य होगा कि चाहे इस बात की प्रार्थना की गई हो या न की गई हो, विधि की सम्यक् प्रक्रिया की आवश्यक अपेक्षा के रूप में उसके लिए काउंसेल की व्यवस्था करे; और उस कर्तव्य का ऐसे समय पर और ऐसी परिस्थितियों के अधीन सलाह देने में असमर्थ नहीं माना जाएगा जिससे वह मामले की तैयारी और विचारण में प्रभावी सहायता से वंचित रह जाए ।'

11. यह बता देना आवश्यक होगा कि **पावेल** (उपरोक्त) वाले मामले में मृत्यु दंडादेश अन्तर्वलित था जहां अभियुक्त अपनी निर्धनता के कारण काउंसेल की नियुक्ति नहीं कर सकता था और इसलिए अपनी प्रतिरक्षा करने में पर्याप्त रूप से असमर्थ था और उच्चतम न्यायालय के अनुसार विचारण न्यायालय द्वारा उसे काउंसेल की नियुक्ति करने में युक्तियुक्त समय और अवसर न दिए जाने के कारण सम्यक् प्रक्रिया का स्पष्ट रूप से खण्डन हुआ था ।

12. बैट्स **बनाम** ब्रेडी (1942) 316 यू. एस. 455 वाले मामले में संयुक्त राज्य के उच्चतम न्यायालय द्वारा स्पष्ट विचलन किया गया था जहां न्यायालय ने एकाएक विषय से हटकर यह अभिनिर्धारित किया कि 14वें संशोधन का 'सम्यक् प्रक्रिया' खण्ड राज्यों पर दांडिक मामलों में सभी निर्धन अभियुक्तों के लिए काउंसेल की नियुक्ति की आत्यंतिक अपेक्षा को इस प्रकार से अधिरोपित नहीं करता जैसा कि छठा संशोधन संघ सरकार पर अधिरोपित करता है । इसमें राज्य से यह अपेक्षित है कि वह केवल तभी काउंसेल की व्यवस्था करे जब मामले की विशिष्ट परिस्थितियों से यह दर्शित हो कि विचारण में काउंसेल के न होने से 'मूल निष्पक्षता' की त्रुटि होगी । **बैट्स** (उपरोक्त) वाले मामले के विनिश्चय से लेकर किसी राज्य न्यायालय में अभियुक्त के संवैधानिक अधिकार की समस्या तब तक वाद-विवाद का स्रोत बनी रही है जब तक गिजियन **बनाम** वेन राइड (1963) 372 यू. एस. 335 नामक प्रसिद्ध मामले में इसका समाधान नहीं कर दिया गया । **बैट्स** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित नियम के अधीन न्यायालय को प्रत्येक मामले में यह अवधारण करने के लिए यह 'विशेष परिस्थितियों' पर विचार करना पड़ता था कि विचारण में काउंसेल का उपलब्ध न किया जाना संवैधानिक दोष की कोटि में आता है या नहीं और राज्य की दांडिक प्रक्रियाओं पर निरन्तर बढ़ रहे संघीय निर्बंधनों के युग में यह चौका देने वाली बात नहीं कि इस न्यायालय ने **बैट्स** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित नियम को **गिजियन** (उपरोक्त) वाले मामले में स्पष्टतः रद्द कर दिया था और यह अभिनिर्धारित किया था कि सभी अंकिचन अभियुक्तों के लिए काउंसेल की गारंटी देने वाला छठा संशोधन (बिना किसी शर्त के) था जो 14वें संशोधन द्वारा बनाया गया था, राज्य पर मूल अधिकार हेतु आबद्धकर था । तथापि, हम संयुक्त राज्य अमेरिका नहीं रहते हैं और इसलिए सही अर्थ में हम 14वें संशोधन के सम्यक् प्रक्रिया खण्ड द्वारा शासित नहीं हैं । अतः, हमें इस विषय पर और अधिक विस्तृत विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है ।

21. **खत्री** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में निम्न अभिनिर्धारित किया गया है :–

"4. इसके पश्चात् हम एक और महत्वपूर्ण विवाद्यक पर जो इस मामले में उठाया गया है, विचार करेंगे । अंधे किए गए बंदियों के संबंध में विभिन्न न्यायिक मजिस्ट्रेटों द्वारा अभिलेखों से समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा दी जाने वाली विशिष्टयों से यह स्पष्ट होता है कि न तो उस समय जब अंधे बंदियों को पहली बार न्यायिक मजिस्ट्रेट के सम्मुख पेश किया गया था और न ही उस समय जब रिमांड आदेश पारित किए गए थे, अंधे किए गए बंदियों में अधिकतर को कोई विधिक प्रतिनिधित्व उपलब्ध था । न्यायिक मजिस्ट्रेट के अभिलेखों से यह दर्शित होता है कि अंधे किए गए बंदियों के लिए किसी विधिक प्रतिनिधित्व का उपबंध नहीं किया गया था, क्योंकि उनमें से किसी ने भी न तो इसकी मांग की थी और न ही न्यायिक मजिस्ट्रेट ने उसके समक्ष पेश किए गए अंधे बंदियों से न तो प्रारंभ में अथवा रिमांड के समय इस बात की पूछताछ की थी कि वे राज्य के खर्चे पर कोई विधिक प्रतिनिधि चाहते हैं या नहीं । अंधे बंदियों को राज्य के खर्चे पर कोई विधिक प्रतिनिधित्व का उपबंध न करने के लिए केवल यह बहाना किया गया था कि अंधे किए गए बंदियों में से किसी ने इसकी मांग नहीं की थी । परिणाम यह हुआ था कि दो या तीन अंधे किए गए बंदियों को छोड़कर जिन्होंने रिमांड के पश्चात्वर्ती प्रक्रम में अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए किसी विधिवेत्ता का प्रबंध कर लिया था, अंधे किए गए बंदियों में से अधिकतर का प्रतिनिधित्व किसी विधिवेत्ता द्वारा नहीं किया गया था और उनमें से कुछ को छोड़कर जिनको जमानत पर निर्मुक्त कर दिया गया था और वह भी पर्याप्त समय तक जेल में रहने के पश्चात् उनमें से बाकी लोग जेल में ही रहे थे । यह समझना कठिन है कि किस तरह से इस मामले की ऐसी स्थिति को **हुसैनआरा खातून** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के बावजूद, बने रहने की

[1] ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 928.

अनुमति दी जा सकती है । इस न्यायालय ने **हुसैनआरा खातून** (उपरोक्त) वाले मामले में जिसका विनिश्चय कुछ पूर्व तारीख 9 मार्च, 1979 में किया गया था, इस बात के प्रति संकेत किया है कि निःशुल्क विधिक सेवाओं का अधिकार किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के लिए युक्तियुक्त, ऋजु और उचित प्रक्रिया का एक आवश्यक तत्व है और अनुच्छेद 21 में दी गई प्रतिभूति में इसे अन्तर्विष्ट अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए और राज्य किसी अभियुक्त व्यक्ति को विधिवेत्ता के उपलब्ध करने के लिए सांविधानिक समादेश के अधीन है, यदि मामले की परिस्थितियों और न्याय की आवश्यकताएं ऐसी अपेक्षा करे, परन्तु निश्चय ही अभियुक्त व्यक्ति ऐसे विधिवेत्ता के उपबंध के लिए कोई आक्षेप नहीं करता है । यह बात दुर्भाग्यपूर्ण है कि यद्यपि इस न्यायालय ने विधिक सहायता के अधिकार को अनुच्छेद 21 के न्यायिक अर्थान्वयन की प्रक्रिया द्वारा किसी अभियुक्त व्यक्ति के मूल अधिकार के रूप में घोषित किया है फिर भी देश में अधिकतर राज्यों ने इस विषय की ओर ध्यान नहीं दिया है और किसी अपराध के अभियुक्त के लिए निःशुल्क विधिक सेवाओं का उपबंध नहीं किया है । हम अनुच्छेद 141 में इस सांविधानिक घोषणा के बावजूद कि इस न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत के सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र पर आबद्ध होगी, अनेक राज्यों द्वारा देश के इस उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय को नजरंदाज करने के लिए खेद प्रकट करते हैं । राज्य की ओर से श्री के. जी. भगत इस बात से सहमत हो गए हैं कि इस न्यायालय के विनिश्चय की दृष्टि से देश के अन्दर के किसी भी अभियुक्त को निःशुल्क विधिक सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए राज्य आबद्ध था किन्तु उसने यह सुझाव दिया कि राज्य को वित्तीय कठिनाईयों के कारण ऐसा करने में कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है । हम बिहार राज्य को यह बता सकते हैं कि वह वित्तीय अथवा प्रशासनिक असमर्थता का अभिवचन करके किसी गरीब अभियुक्त को निःशुल्क विधिक सेवाएं उपलब्ध कराने की अपनी सांविधानिक बाध्यता से बच नहीं सकता है । राज्य किसी अभियुक्त व्यक्ति को निःशुल्क विधिक सहायता

उपलब्ध कराने के लिए जो निर्धनता के कारण विधिक सेवाएं प्राप्त करने योग्य नहीं हैं, और जो कुछ इस प्रयोजन के लिए आवश्यक हो, वह राज्य द्वारा किया जाता है । राज्य की अपनी वित्तीय कठिनाइयां हो सकती हैं और व्यय में उसकी अपनी पूर्विक्ताएं हो सकती हैं किन्तु रेम **बनाम** मालकम [(377 (एफ) सप्ली. 995] वाले मामले में न्यायालय द्वारा यह संकेत किया गया है कि "विधि किसी सरकार को अपने नागरिकों को गरीबी का अभिवाक् करके सांविधानिक अधिकारों से वंचित करने की अनुमति नहीं देती है" और जैक्सन **बनाम** बिशप [(404 (एफ) सप्ली. II 571] वाले मामले में न्यायाधीश ब्लैकमम के शब्द इस प्रकार हैं – "मानवता के सिद्धांत और सांविधानिक अपेक्षाओं को आज डालर के मूल्य से मापा नहीं जा सकता" । इसके अतिरिक्त, किसी गरीब अभियुक्त को निःशुल्क विधिक सेवाएं उपलब्ध कराने की सांविधानिक बाध्यता केवल उस समय उत्पन्न नहीं होती है जब विचारण प्रारंभ होता है अपितु उस समय भी यह आवश्यक है जब अभियुक्त को पहली बार मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है । यह उस समय प्रारंभिक है जब किसी व्यक्ति को जैसे ही गिरफ्तार किया जाता है और मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है तब उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है क्योंकि उस स्तर पर उसे जमानत के लिए आवेदन करने का तथा अपनी निर्मुक्ति अभिप्राप्त करने का साथ ही पुलिस जेल अभिरक्षा में रिमांड का विरोध करने का भी प्रथम अवसर मिलता है । यह वह प्रक्रम है जिस पर किसी अभियुक्त व्यक्ति को सक्षम विधिक सलाह तथा प्रतिनिधित्व की आवश्यकता होती है और किसी भी प्रक्रिया को युक्तियुक्त, ऋजु और न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है जो उस स्तर पर उसे विधिक सलाह और प्रतिनिधित्व से वंचित करे । अतएव, हमें यह अभिनिर्धारित करना चाहिए कि राज्य किसी गरीब अभियुक्त को न केवल विचारण के प्रक्रम पर अपितु उस प्रक्रम पर भी जब उसे प्रथम बार मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, साथ ही साथ जब उसे समय-समय पर रिमांड किया जाता है, निःशुल्क विधिक सलाह उपलब्ध कराने की सांविधानिक बाध्यता के अधीन है ।

5. किन्तु निःशुल्क विधिक सलाह का यह अधिकार भी किसी निर्धन अभियुक्त के लिए कल्पना मात्र हो जाएगा जब तक कि वह मजिस्ट्रेट या सेशन न्यायाधीश जिसके समक्ष उसे पेश किया जाता है, ऐसे अधिकार से उसे सूचित नहीं करता है । यह सामान्य ज्ञान की बात है कि ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 70 प्रतिशत लोग निरक्षर होते हैं और इससे भी अधिक प्रतिशत में विधि द्वारा उन्हें प्रदत्त अधिकार से अवगत नहीं होते हैं । विधिक जानकारी की इतनी कमी है कि इस देश में विधिक सहायता के कार्यक्रम की सदैव यह एक मुख्य बात समझी गई है कि विधिक साक्षरता को प्रोन्नति दी जाए । विधिक सहायता का यह मजाक उड़ाना होगा कि यदि उसे किसी गरीब, अनभिज्ञ और निरक्षर अभियुक्त से निःशुल्क विधिक सहायता की मांग पर छोड़ दिया जाए । विधिक सहायता मात्र एक कागज पर किए जाने वाला वचन रह जाएगा और उसका प्रयोजन असफल हो जाएगा । मजिस्ट्रेट अथवा सेशन न्यायाधीश जिसके समक्ष अभियुक्त उपस्थित होता है, उसे अभियुक्त को इस बात से सूचित करने की बाध्यता के अधीन समझा जाना चाहिए कि यदि वह गरीबी अर्थात् दरिद्रता के कारण कोई विधिक सेवा प्राप्त करने में असमर्थ है तो वह राज्य के खर्चे पर निःशुल्क विधिक सेवा अभिप्राप्त करने के लिए हकदार है । दुर्भाग्यवश न्यायिक मजिस्ट्रेट, अंधे किए गए व्यक्तियों के मामले में इस बाध्यता का निर्वहन करने में असफल हो गया था जो उन्होंने मात्र यह कथन किया था कि अंधे किए गए व्यक्तियों द्वारा किसी विधिक प्रतिनिधित्व की मांग की गई थी और इसलिए वह किसी को उपलब्ध नहीं की गई थी । अतएव, हम यह निदेश देंगे कि देश में मजिस्ट्रेट और सेशन न्यायाधीश प्रत्येक अभियुक्त को जो उनके समक्ष उपस्थित होता है और जिसका अपनी निर्धनता अथवा दरिद्रता के कारण किसी विधिवेत्ता द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं किया जाता है, उसे इस बात से सूचित करे कि वह राज्य के खर्चे पर निःशुल्क विधिक सेवाओं के लिए हकदार है । जब तक कि वह राज्य द्वारा उपलब्ध निःशुल्क विधिक सेवाओं का फायदा उठाने के लिए इच्छुक न हो तब तक उसे राज्य के खर्चे पर विधिक

प्रतिनिधित्व उपलब्ध नहीं होना चाहिए । हम बिहार राज्य को यह भी निदेश देंगे कि और देश के प्रत्येक अन्य राज्य से किसी अभियुक्त को जो निर्धनता, दरिद्रता अथवा जानकारी न होने की स्थिति के कारण किसी विधिवेत्ता की सहायता लेने में असमर्थ है, निःशुल्क विधिक सेवाएं प्रदान करने का उपबंध करने हेतु देश के प्रत्येक अन्य राज्य से अपेक्षा करेंगे । एकमात्र अर्हता यह होगी कि अभियुक्त के विरुद्ध आरोपित आरोप ऐसा है कि दोषसिद्ध किए जाने पर उसका परिणाम कारावास का दंडादेश होगा और ऐसी प्रकृति का है कि मामले की परिस्थितियां और सामाजिक न्याय की आवश्कताएं यह अपेक्षा करती हैं कि उसे निःशुल्क विधिक प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए । ऐसे अपराध भी हो सकते हैं जैसे कि आर्थिक अपराध अथवा वेश्यावृत्ति का निषेध करने वाली विधि या बालकों का शोषण अथवा इसी प्रकार के अपराध, जहां सामाजिक न्याय यह अपेक्षा करेगा कि निःशुल्क विधिक सेवाओं के राज्य द्वारा उपलब्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।"

22. मात्र इस कारण से कि उच्चतम न्यायालय द्वारा देश में मजिस्ट्रेट तथा सेशन न्यायाधीश को यह निदेश दिया गया है कि वे अपने समक्ष बिना किसी माध्यम से पेश होने वाले प्रत्येक अभियुक्त को इस संबंध में सूचित करें कि वह राज्य के खर्चे पर निःशुल्क विधि सहायता पाने का हकदार है । इसका अनुपालन किए जाने के लिए न्यायालय बाध्य थे और बाध्य हैं । अभियुक्त को राज्य के खर्चे पर विधिक प्रतिनिधि उपलब्ध कराया जाना चाहिए जब तक कि वह स्वयं ऐसा किए जाने से इनकार न करे । उच्चतम न्यायालय द्वारा दिया गया यह निदेश पूरे भारत में सभी न्यायालयों पर बाध्य है जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 141 के अधीन उपबंधित है । अतः, इससे संबंधित सभी से यह प्रत्याशा की जाती है कि इस निदेश का समुचित रूप से पालन किया जाए ।

23. यह सुनिश्चित करने के लिए कि विद्वान् निचले न्यायालय ने इस निदेश का पालन किया है या नहीं आदेश-पत्रिका (आर्डर-शीट) का समुचित रूप से सत्यापन किया गया है । इसका परिशीलन करने के

पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि न तो आरोप विरचित किए जाने की तारीख को और न ही उसके पश्चात् न्यायालय ने यह मालूम किया कि अभियुक्त की ओर से कोई वकील नियुक्त किया गया है या नहीं और न ही विद्वान् पीठासीन अधिकारी ने यह कहा कि अभियुक्त को राज्य के खर्चे पर वकील उपलब्ध कराया जाए । विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा आदेश-पत्रिका में ऐसा कोई टिप्पण नहीं किया गया है जिससे यह पता चलता हो कि इस संबंध में कोई प्रयास किया गया था । तथापि, अभि. सा. 1 के अभिसाक्ष्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस संबंध में कोई टिप्पणी की गई है ।

24. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय के ऊपर निर्दिष्ट निदेशों के अनुसरण में यह स्पष्ट है कि विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष चलने वाले विचारण से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 303 और 304 की आज्ञा का अतिक्रमण हुआ है जिसका यह अर्थ हुआ कि वास्तव में अपीलार्थी को प्रतिरक्षा का अवसर नहीं मिला है जिसके परिणामस्वरूप यह निर्णय कायम रखे जाने योग्य नहीं है और अपास्त किया जाता है । इस प्रकार यह अपील मंजूर की जाती है ।

25. यह मामला नए सिरे से विचारण की कार्यवाही के लिए निचले न्यायालय को इस निदेश के साथ वापस भेजा जाता है कि राज्य के खर्चे पर अपीलार्थी को काउंसेल उपलब्ध कराया जाए जो विचारण के दौरान अपीलार्थी का प्रतिनिधित्व करेगा ।

न्यायमूर्ति राजेन्द्र कुमार मिश्रा – मैं सहमत हूं ।

अपील मंजूर की गई ।

अस.

संसद् के अधिनियम

सती (निवारण) अधिनियम, 1987

(1988 का अधिनियम संख्यांक 3)

[3 जनवरी, 1988]

सती कर्म के और उसके गौरवान्वयन के अधिक प्रभावी निवारण के लिए और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए

अधिनियम

सती या विधवाओं या स्त्रियों का जीवित दहन या गाड़ा जाना मानव प्रकृति की भावनाओं के विपरीत है और यह भारत के किसी भी धर्म में कहीं भी अनिवार्य कर्तव्य के रूप में आदिष्ट नहीं है ;

और सती कर्म के और उसके गौरवान्वयन के निवारण के लिए अधिक प्रभावी उपाय करना आवश्यक है ;

भारत गणराज्य के अड़तीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :-

भाग 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ - (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम सती (निवारण) अधिनियम, 1987 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह किसी राज्य में उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार राजपत्र में, अधिसूचना द्वारा, नियत करे और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी ।

2. परिभाषाएं - (1) इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, -

(क) "संहिता" से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) अभिप्रेत है ;

(ख) सती कर्म के संबंध में, "गौरवान्वयन" के अंतर्गत चाहे सती कर्म इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व किया गया हो या उसके पश्चात्, अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित है –

(i) सती कर्म के संबंध में कोई अनुष्ठान करना या कोई जुलूस निकालना ; या

(ii) सती की प्रथा का किसी भी रीति से समर्थन करना, न्यायोचित ठहराना या प्रचार करना ; या

(iii) उस स्त्री का, जिसने सती कर्म किया है, गुणगान करने के लिए किसी समारोह का आयोजन करना ; या

(iv) उस स्त्री के, जिसने सती कर्म किया है, सम्मान को कायम रखने या स्मृति को बनाए रखने की दृष्टि से किसी न्यास का सृजन करना या निधि का संग्रह करना, या कोई मंदिर या अन्य संरचना सन्निर्मित करना या उसमें किसी भी रूप में उपासना करना या कोई अनुष्ठान करना ;

(ग) "सती कर्म" से अभिप्रेत है, –

(i) किसी विधवा का उसके मृत पति या किसी अन्य नातेदार के शरीर के साथ या पति या ऐसे नातेदार से संबंधित किसी वस्तु, पदार्थ या चीज के साथ जीवित दहन या गाड़ देने का कार्य ; अथवा

(ii) किसी स्त्री का उसके किसी भी नातेदार के शरीर के साथ जीवित दहन या गाड़ देने का कार्य, भले ही यह दावा किया जाए कि ऐसा दहन या गाड़ देना विधवा या स्त्री की ओर से स्वेच्छा से किया गया है या अन्यथा ;

(घ) "विशेष न्यायालय" से धारा 9 के अधीन गठित विशेष न्यायालय अभिप्रेत है ;

(ङ) "मंदिर" के अंतर्गत ऐसे व्यक्ति की, जिसके संबंध में सती कर्म किया गया है, स्मृति बनाए रखने के लिए सन्निर्मित या बनाया गया और किसी भी रूप में उपासना करने के लिए या ऐसे सती कर्म के संबंध में कोई अन्य अनुष्ठान करने के लिए उपयोग किया जाने वाला या उपयोग किए जाने के लिए आशयित कोई भवन या कोई संरचना है चाहे उस पर छत है या नहीं ।

(2) उन शब्दों और पदों के जो इस अधिनियम में प्रयुक्त हैं किन्तु परिभाषित नहीं हैं और भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) या संहिता में परिभाषित हैं, वही अर्थ होंगे जो भारतीय दंड संहिता में हैं ।

भाग 2

सती कर्म से संबंधित अपराधों के लिए दंड

3. सती कर्म करने का प्रयत्न – भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) में किसी बात के होते हुए भी, जो कोई सती कर्म करने का प्रयत्न करेगा और सती कर्म करने का कोई कार्य करेगा, वह कारावास से जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडनीय होगा :

परंतु इस धारा के अधीन किसी अपराध का विचारण करने वाला विशेष न्यायालय किसी व्यक्ति को सिद्धदोष ठहराने से पूर्व, अपराध किए जाने की परिस्थितियों, किए गए कार्य, अपराध से आरोपित व्यक्ति की कार्य करने के समय मानसिक दशा और अन्य सभी सुसंगत बातों पर विचार करेगा ।

4. सती कर्म करने का दुष्प्रेरण – (1) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) में किसी बात के होते हुए भी, यदि कोई स्त्री सती कर्म करती है, तो जो कोई सती कर्म करने का, प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: दुष्प्रेरण करेगा, वह मृत्यु से, या आजीवन कारावास से, दंडनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगा ।

(2) यदि कोई स्त्री सती कर्म करने का प्रयत्न करती है, तो जो कोई ऐसे प्रयत्न का प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: दुष्प्रेरण करेगा, वह

आजीवन कारावास से दंडनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए निम्नलिखित कार्यों में से किसी कार्य या तत्समान कार्यों को भी दुष्प्रेरण समझा जाएगा, अर्थात् :–

(क) किसी विधवा या स्त्री को उसके मृत पति या किसी अन्य नातेदार के शरीर के साथ या पति या ऐसे नातेदार से संबंधित किसी वस्तु, पदार्थ या चीज के साथ, स्वयं का जीवित दहन कर लेने या गड़ जाने के लिए उत्प्रेरित करना, चाहे वह ठीक मानसिक दशा में है या मत्तता या संज्ञा शून्यता की हालत में है या ऐसा कोई अन्य कारण है जो उसकी स्वतंत्र इच्छा के प्रयोग में बाधा डाल रहा है ;

(ख) किसी विधवा या स्त्री को यह विश्वास दिलाना कि सती कर्म के परिणामस्वरूप उसे या उसके मृत पति या नातेदार को कुछ आध्यात्मिक लाभ होगा या कुटुम्ब का पूर्ण कल्याण होगा ;

(ग) किसी विधवा या स्त्री को, सती कर्म करने के उसके संकल्प में दृढ़ बने रहने के लिए प्रोत्साहित करना और इस प्रकार उसे सती कर्म करने के लिए उकसाना ;

(घ) सती कर्म से संबंधित किसी जुलूस में भाग लेना या विधवा या स्त्री को उसके मृत पति या नातेदार के शरीर के साथ शवदाह या शमशान भूमि तक ले जाकर सती कर्म करने के उसके विनिश्चय में सहायता करना ;

(ङ) उस स्थान पर, जहां सती कर्म किया जा रहा है, सती कर्म करने के कार्य में या उससे संबंधित किसी अनुष्ठान में सक्रिय सहभागी के रूप में उपस्थित रहना ;

(च) विधवा या स्त्री को, जीवित दहन या गाड़े जाने से अपने को बचाने से रोकना या उसमें बाधा पहुंचाना ;

(छ) सती कर्म के निवारण के लिए पुलिस के कोई कदम

उठाने के उसके कर्तव्यों के निर्वहन में बाधा पहुंचाना या हस्तक्षेप करना ।

5. सती कर्म के गौरवान्वयन के लिए दंड – जो कोई सती कर्म के गौरवान्वयन के लिए कोई कार्य करेगा, वह कारावास से जिसकी अवधि एक वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से, जो पांच हजार रुपए से कम का नहीं होगा किन्तु जो तीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

भाग 3

सती कर्म से संबंधित अपराधों के निवारण के लिए कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट की शक्तियां

6. कुछ कार्यों का प्रतिषेध करने की शक्ति – (1) जहां कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट की यह राय है कि सती कर्म किया जा रहा है या उसके किए जाने का दुष्प्रेरण किया जा रहा है या सती कर्म किया जाने वाला है वहां वह, आदेश द्वारा, ऐसे क्षेत्र या क्षेत्रों में, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं, किसी व्यक्ति द्वारा सती कर्म से संबंधित किसी कार्य के किए जाने का प्रतिषेध कर सकेगा ।

(2) कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट, आदेश द्वारा, उस आदेश में विनिर्दिष्ट किसी क्षेत्र या क्षेत्रों में किसी व्यक्ति द्वारा सती कर्म के किसी रीति से गौरवान्वयन को प्रतिषिद्ध कर सकेगा ।

(3) जो कोई उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन किए गए किसी आदेश का उल्लंघन करेगा, वह, यदि ऐसा उल्लंघन इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध के अधीन दंडनीय नहीं है तो कारावास से जिसकी अवधि एक वर्ष से कम की नहीं होगी, किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से, जो पांच हजार रुपए से कम का नहीं होगा किन्तु जो तीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

7. कुछ मंदिरों या अन्य संरचनाओं को हटाने की शक्ति – (1) यदि राज्य सरकार का यह समाधान हो जाता है कि किसी मंदिर या

अन्य संरचना में, जो बीस वर्ष से अन्यून समय से विद्‌यमान है, किसी ऐसे व्यक्ति के, जिसके संबंध में सती कर्म किया गया है, सम्मान को कायम रखने या उसकी स्मृति को बनाए रखने की दृष्टि से किसी रूप में उपासना या कोई अनुष्ठान किया जाता है तो वह, आदेश द्‌वारा, ऐसे मंदिर या संरचना को हटाने का निदेश दे सकेगी ।

(2) यदि कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट का यह समाधान हो जाता है कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट से भिन्न किसी मंदिर या अन्य संरचना में, ऐसे व्यक्ति के, जिसके संबंध में सती कर्म किया गया है, सम्मान को कायम रखने या उसकी स्मृति को बनाए रखने की दृष्टि से किसी रूप में उपासना या कोई अन्य अनुष्ठान किया जाता है तो वह, आदेश द्‌वारा, ऐसे मंदिर या संरचना को हटाने का निदेश दे सकेगा ।

(3) जहां उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन किसी आदेश का अनुपालन नहीं किया जाता है, वहां, यथास्थिति, राज्य सरकार या कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट, मंदिर या अन्य संरचना को किसी ऐसे पुलिस अधिकारी के, जो उपनिरीक्षक की पंक्ति से नीचे का न हो, माध्यम से, व्यतिक्रमी के खर्चे पर, हटवाएगा ।

8. कुछ संपत्तियां अभिग्रहण करने की शक्ति – (1) जहां कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट को यह विश्वास करने का कारण है कि सती कर्म के गौरवान्वयन के प्रयोजन के लिए कोई निधि या संपत्ति संगृहीत या अर्जित की गई है या जो ऐसी परिस्थितियों में पाई जाती है जो इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के किए जाने का संदेह उत्पन्न करती है, वहां वह ऐसी निधि या संपत्ति का अभिग्रहण कर सकेगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन कार्य करने वाला प्रत्येक कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट, किसी ऐसे अपराध का, जिसके संबंध में ऐसी निधि या संपत्ति संगृहीत या अर्जित की गई थी, विचारण करने के लिए गठित विशेष न्यायालय को, यदि कोई है, ऐसे अभिग्रहण की रिपोर्ट देगा और उसके व्ययन के बारे में ऐसे विशेष न्यायालय के आदेश की प्रतीक्षा करेगा ।

भाग 4

विशेष न्यायालय

9. इस अधिनियम के अधीन अपराधों का विचारण – (1) संहिता में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन सभी अपराध, इस धारा के अधीन गठित किसी विशेष न्यायालय द्वारा ही विचारणीय होंगे ।

(2) राज्य सरकार इस अधिनियम के अधीन अपराधों के विचारण के लिए राजपत्र में, अधिसूचना द्वारा, एक या अधिक विशेष न्यायालय गठित करेगी और प्रत्येक विशेष न्यायालय संपूर्ण राज्य या उसके ऐसे भाग की बाबत, अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए, अधिकारिता का प्रयोग करेगा ।

(3) विशेष न्यायालय में ऐसा न्यायाधीश पीठासीन होगा जो राज्य सरकार द्वारा, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, नियुक्त किया जाएगा ।

(4) कोई व्यक्ति किसी विशेष न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए तब तक अर्हित नहीं होगा जब तक वह ऐसी नियुक्ति में ठीक पूर्व, किसी राज्य में सेशन न्यायाधीश या अपर सेशन न्यायाधीश नहीं हो ।

10. विशेष लोक अभियोजक – (1) प्रत्येक विशेष न्यायालय के लिए राज्य सरकार किसी व्यक्ति को विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त करेगी ।

(2) कोई व्यक्ति इस धारा के अधीन विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त किए जाने का तभी पात्र होगा जब उसने सात वर्ष से अन्यून अवधि तक अधिवक्ता के रूप में व्यवसाय किया है, या राज्य के अधीन सात वर्ष से अन्यून अवधि तक ऐसा कोई पद धारण किया है, जिसमें विधि के विशेष ज्ञान की अपेक्षा है ।

(3) इस धारा के अधीन विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त

प्रत्येक व्यक्ति को संहिता की धारा 2 के खंड (प) के अर्थ में लोक अभियोजक समझा जाएगा और तद्नुसार संहिता के उपबंध प्रभावी होंगे ।

11. विशेष न्यायालयों की प्रक्रिया और शक्तियां – (1) विशेष न्यायालय ऐसे तथ्यों के परिवाद के प्राप्त होने पर जिनसे ऐसा अपराध गठित होता है या ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर, अभियुक्त को विचारण के लिए अपने को सुपुर्द किए जाने के बिना, किसी अपराध का संज्ञान कर सकेगा ।

(2) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, विशेष न्यायालय को किसी अपराध के विचारण के प्रयोजन के लिए, सेशन न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी और ऐसे अपराधों का विचारण यावत्शक्य, सेशन न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए संहिता में विहित प्रक्रिया के अनुसार वैसे ही करेगा मानो वह सेशन न्यायालय हो ।

12. विशेष न्यायालयों की अन्य अपराधों की बाबत शक्ति – (1) इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का विचारण करते समय, विशेष न्यायालय ऐसे किसी अन्य अपराध का भी विचारण कर सकेगा जिसके लिए अभियुक्त पर उसी विचारण में संहिता के अधीन आरोप लगाया जाए यदि अपराध ऐसे अन्य अपराध से संबंधित है ।

(2) यदि इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के किसी विचारण के दौरान यह पाया जाता है कि अभियुक्त व्यक्ति ने इस अधिनियम के अधीन या किसी अन्य विधि के अधीन कोई अन्य अपराध किया है, तो विशेष न्यायालय, ऐसे व्यक्ति को ऐसे अन्य अपराध के लिए भी सिद्धदोष ठहरा सकेगा और उसके दंड के लिए इस अधिनियम द्वारा या ऐसी अन्य विधि द्वारा प्राधिकृत कोई दंडादेश पारित कर सकेगा ।

(3) प्रत्येक जांच या विचारण में, कार्यवाही यथासंभव शीघ्रता के साथ की जाएगी और विशिष्टतया वहां जहां साक्षियों की परीक्षा प्रारंभ हो गई है, वह दिन प्रतिदिन तब तक चलती रहेगी जब तक हाजिर सभी साक्षियों की परीक्षा नहीं हो जाती है, और यदि कोई विशेष न्यायालय

उसका पश्चात्वर्ती तारीख से आगे के लिए स्थगित किया जाना आवश्यक समझता है तो वह ऐसा करने के लिए अपने कारण लेखबद्ध करेगा ।

13. निधि या संपत्ति का समपहरण – जहां किसी व्यक्ति को इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया है, वहां ऐसे अपराध का विचारण करने वाला विशेष न्यायालय, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझे तो, यह घोषणा कर सकेगा कि धारा 8 के अधीन अभिगृहीत कोई निधि या संपत्ति राज्य को समपहृत हो जाएगी ।

14. अपील – (1) संहिता में किसी बात के होते हुए भी, विशेष न्यायालय के किसी निर्णय, दंडादेश या आदेश से, जो अंतर्वर्ती आदेश नहीं है, तथ्य और विधि, दोनों पर उच्च न्यायालय को साधिकार अपील होगी ।

(2) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील उस निर्णय, दंडादेश या आदेश की तारीख से, जिससे अपील की गई है, तीस दिन के भीतर की जाएगी :

परंतु उच्च न्यायालय, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी के पास तीस दिन की अवधि के भीतर अपील न करने के लिए पर्याप्त कारण था तो, तीस दिन की उक्त अवधि के अवसान के पश्चात् कोई अपील ग्रहण कर सकेगा ।

भाग 5

प्रकीर्ण

15. इस अधिनियम के अधीन की गई कार्रवाई का संरक्षण – इस अधिनियम या इस अधिनियम के अधीन बनाए गए किसी नियम या आदेश के अनुसरण में, सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही राज्य सरकार या राज्य सरकार के किसी अधिकारी या प्राधिकारी के विरुद्ध नहीं होगी ।

16. सबूत का भार – जहां किसी व्यक्ति को धारा 4 के अधीन किसी अपराध के लिए अभियोजित किया गया है वहां यह साबित करने

का भार कि उसने उक्त धारा के अधीन अपराध नहीं किया है, उस पर होगा ।

17. कुछ व्यक्तियों की इस अधिनियम के अधीन अपराध किए जाने के बारे में रिपोर्ट करने की बाध्यता – (1) सरकार के सभी अधिकारियों से, इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम या आदेश के उपबंधों के निष्पादन में पुलिस की सहायता करने के लिए अपेक्षा की जाती है और उन्हें सशक्त किया जाता है ।

(2) सभी ग्राम अधिकारी और ऐसे अन्य अधिकारी, जिन्हें कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट किसी क्षेत्र के संबंध में विनिर्दिष्ट करे और ऐसे क्षेत्र के निवासी, यदि उन्हें यह विश्वास करने का कारण है, या यह ज्ञान है कि उस क्षेत्र में सती कर्म किया जाने वाला है या सती कर्म किया गया है तो, ऐसे तथ्य की रिपोर्ट निकटतम पुलिस थाने में तुरंत करेंगे ।

(3) जो कोई उपधारा (1) या उपधारा (2) के उपबंधों का उल्लंघन करेगा, वह दोनों में से किसी भी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगा ।

18. धारा 4 के अधीन किसी अपराध के सिद्धदोष व्यक्ति का कुछ संपत्ति विरासत में पाने से निरर्हित होना – सती कर्म करने के संबंध में धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन किसी अपराध को सिद्धदोष व्यक्ति, ऐसे व्यक्ति की, जिसके संबंध में सती कर्म किया गया है, संपत्ति या ऐसे अन्य व्यक्ति की संपत्ति, जिसका वह ऐसे व्यक्ति की, जिसके संबंध में सती कर्म किया गया है, मृत्यु पर विरासत में पाने का हकदार होता, विरासत में पाने से निरर्हित हो जाएगा ।

*__19. 1951 के अधिनियम 43 का संशोधन__ – लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में, –

---

* 3.5.2001 की धारा 2 और पहली अनुसूची द्वारा धारा 19 निरसित ।

(क) धारा 8 की उपधारा (2) में, परन्तुक के पश्चात् निम्नलिखित परंतुक अंत: स्थापित किया जाएगा, अर्थात् :

"परन्तु यह और कि सती (निवारण) अधिनियम, 1987 के किन्हीं उपबंधों के उल्लंघन के लिए किसी विशेष न्यायालय द्वारा सिद्धदोष ठहराया गया व्यक्ति ऐसी दोषसिद्धि की तारीख से निरर्हित होगा और अपने छोड़े जाने से पांच वर्ष की अतिरिक्त अवधि के लिए निरर्हित बना रहेगा ।"

(ख) धारा 123 में, खंड (3क) के पश्चात् निम्नलिखित खंड अंत: स्थापित किया जाएगा, अर्थात् :-

'(3ख) किसी अभ्यर्थी या उसके अभिकर्ता या अभ्यर्थी या उसके निर्वाचन अभिकर्ता की सहमति से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, उस अभ्यर्थी के निर्वाचन की संभाव्यताओं को अग्रसर करने के लिए या किसी अभ्यर्थी के निर्वाचन पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए सती की प्रथा या उसके कर्म का प्रचार या उसका गौरवान्वयन ।

स्पष्टीकरण – इस खंड के प्रयोजनों के लिए "सती कर्म" और सती कर्म के संबंध में "गौरवान्वयन" के क्रमश: वही अर्थ होंगे जो सती (निवारण) अधिनियम, 1987 में हैं ।'।

20. अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव होना – इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम या किए गए आदेश का उपबंध, इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति में या इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति के आधार पर प्रभावी किसी लिखत में, उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे ।

21. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियम बना सकेगी ।

(2) इस धारा के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष जब वह सत्र में हो,

कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किंतु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

22. विद्यमान विधियों का निरसन – (1) किसी राज्य में इस अधिनियम के प्रारंभ होने के ठीक पूर्व उस राज्य में प्रवृत्त सभी विधियां, जो सती कर्म के निवारण या गौरवान्वयन का उपबंध करती हैं, ऐसे प्रारंभ पर, निरसित हो जाएंगी ।

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी, उपधारा (1) के अधीन निरसित किसी विधि के अधीन की गई कोई बात या कार्रवाई इस अधिनियम के तत्स्थानी उपबंधों के अधीन की गई समझी जाएगी और, विशिष्टतया इस प्रकार निरसित किसी विधि के उपबंधों के अधीन किसी विशेष न्यायालय द्वारा संज्ञान किए गए और उस राज्य में इस अधिनियम के प्रारंभ के ठीक पूर्व उसके समक्ष लंबित किसी मामले पर कार्रवाई ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् उस विशेष न्यायालय द्वारा वैसे ही जारी रहेगी, मानो वह विशेष न्यायालय इस अधिनियम की धारा 9 के अधीन गठित किया गया हो ।

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय – डा. एस. सी. खरे – 1996	273	115	29.00
2.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) – विधि साहित्य प्रकाशन – 2000	209	225	57.00
3.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	290.00
4.	मानव अधिकार – डा. शिवदत्त शर्मा – 2006	340	120	60.00
5.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. विधि शब्दावली	सातवां संस्करण, 2015	कीमत रु. 375/-
2. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2019	कीमत रु. 1,900/-
3. भारत का संविधान (सिंधी भाषा में)	1998	कीमत रु. 45/-
4. बहुभाषी संविधान शब्दावली	1986	कीमत रु. 12/-

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Website : www.lawmin.nic.in
Email : am.vsp-molj@gov.in

Cover-IV

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 47259/88

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन https://bharatkosh.gov.in/product/product पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in